योग-साधन-माला, वर्ष ३ पुष्प १४—

ॐ

ऋषिजन्मशताब्दिस्मरणार्थं—

संस्कार-विज्ञानम्

अर्थात्

षोडशसंस्कार और उनकी व्याख्या ।

लेखक और प्रकाशक—

श्रीस्वामी अभयानन्द सरस्वती,

योगमण्डल 'गुरुकुल' काशी ।

मुद्रक—

शिवराम-मालिक,

दी नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट ।

मू० ॥=)] कार्तिक सम्वत् १९८१ वि० [दश आने

❀ अनुक्रमणिका ❀

वक्तव्य

वर्तमान युग में भारतीय सभ्यता के विधाता ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने मनुष्य समाज के आन्तरिक स्वरूप को शुद्ध करने करानेके निमित्त प्रचलित संस्कार भास्कर आदि ग्रंथों को भी संशोधित करके वैदिक "संस्कारविधि" नामक ग्रंथ की पुनः रचना कर मनुष्य मात्र का बड़ा ही उपकार किया है। आप का कथन है कि "जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिये संस्कारों को करना सब मनुष्यों को अति उचित है।" खेद है कि उन्हीं के स्थापित आर्य्यसमाज की जनता ने भी अभीतक अपने आन्तरिक स्वरूप को षोडश संस्कारों के द्वारा उत्तम बनाने का प्रयत्न नहीं किया। 'योगमण्डल' काशी ने उक्त ऋषि के जन्म शताब्दि के उपलक्ष में 'योगसाधनमाला' का १४ वां पुष्प "संस्कारविज्ञान" नाम की पुस्तक सर्व साधारण में प्रचारार्थ प्रकाशित किया है। आशा है कि संस्कार प्रेमी सज्जन अपने भावी जीवन के कल्याणार्थ उक्त पुस्तक की व्याख्या सहित स्वाध्याय कर ऋषि ऋण से मुक्त होने का प्रयत्न करेंगे। शमित्योम् ॥

—मंत्री, योगमण्डल,

काशी।

* ओ३म् तत्सद्ब्रह्मणे नमः *

अथ संस्कारविज्ञानम्।

प्रिय वाचक वृन्द !

संस्कार क्या है ?

संस्कार उसको कहते हैं जिसके द्वारा शरीर, मन और आत्मा शुद्ध हो तथा सन्तान भी उत्तम हो, वह गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि (भस्म) पर्यन्त मनुष्यों को १६ संस्कार अवश्य करना चाहिए, जैसा मनुस्मृति अ० २ श्लो० १६ में लिखा है :—

"निषेकादिश्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितोविधिः।"

वे संस्कार ये हैं—१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूणाकर्म, ९ कर्णवेध, १० उपनयन, ११ वेदारम्भ, १२ समावर्तन, १३ विवाह, १४ वानप्रस्थ, १५ संन्यास, और १६ अन्त्येष्टि।

व्यासस्मृति अ० १ श्लो० १५ में भी इन्हीं संस्कारों को बतलाकर १६ की गणना की है, कि—

"संस्कारःषोडशस्मृताः ।"

मनुष्य देह के चारफल (१ धर्म, २ अर्थ, ३ काम, ४ मोक्ष) की प्राप्ति सब का ही अभीष्ट है अतएव शरीर, मन आत्मा की शुद्धि प्रथम संस्कारों द्वारा ही करना आवश्यक है। 'सम' पूर्वक कृञ्धातु से संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिसका अच्छे प्रकार सुधार करना है। यह दो प्रकार का होता है—(१) शरीर सम्बन्धी, (२) आत्मा सम्बन्धी संस्कार अति उत्तम है, इसी कारण 'यज्ञोपवीत और वेदारम्भ' १६ संस्कारों में मुख्य समझना चाहिए।

❀ संस्कार की आवश्यकता ❀

सज्जनो ! जितनी वस्तुयें इस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न की हैं, मैं जानता हूं कि उन सब को सुधराव की आवश्यकता है, यहां तक कि बिना सुधराव किये हम उनसे अपना कार्य भी नहीं ले सकते और न वे उत्तम जान पड़ती हैं। क्या आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशा में होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता, परन्तु जब उसको कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वही पत्थर उत्तम जान पड़ता है और प्रत्येक मनुष्य उसको देखकर प्रसन्न होता है। इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी बिना सान दिये बेडोल रहते हैं और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं। यही सान देना एक प्रकार का संस्कार कहाता है। इसी प्रकार बुरी और छोटी से छोटी वस्तु भी अच्छी और बड़ी हो सकती है। पक्षियों की भाषा और रंग भी सुधराव से उत्तम हो जाता है। परन्तु शोक है कि हम पशु पक्षियों और घास आदि के सुधार के लिए नाना प्रकार के उपाय (संस्कार) करें और

मनुष्य मात्र के सुधार के अर्थ संस्कार करना वृथा समझें। देखिये जो मनुष्य वेदारम्भ संस्कार कर विद्या पढ़ लेते हैं वही सभ्य और जो विद्या नहीं पढ़ते हैं वही असभ्य कहाते हैं। इसलिये मनुष्य जीवन का उद्देश्य जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पूर्व लिख आए हैं जिनमें पुराने ऋषियों ने मोक्षरूपी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर चार आश्रमों के स्टेशन (सदन) बनाये थे और जीवन यात्रा कि आरम्भिक दिवस से अन्तिम दिवस तक जो जीवन को उत्तम बनाने वाले नैमित्तिक विशेष कर्म थे उनका नाम 'षोडश संस्कार' रखा था। इन षोडश संस्कारों के प्रभाव से प्रभावित होकर, आर्य ऋषियों ने भारत वर्ष से शारीरिक असाध्यरोग, मानसिक विकार और जनविध्वंसक महारोगों को दूर भगा दिया था।

संस्कार शब्द जिसका भावार्थ शुद्ध करने वा भलीप्रकार उत्तमता से कर्म करने के हैं। ऋषियों के पास साधारण मनुष्य का उत्तम तथा उन्नत मनुष्य बनाने का जो साधन था उसको 'संस्कार' कहते हैं। भौतिक उन्नति के साथ २ जब तक मनुष्य को उत्तम मनुष्य बनाने के लिये संस्कार रूपी साधन काम में नहीं लाये जाते तब तक तमाम सांसारिक वैभव और अभ्युदय रहते हुए भी रात को सुख की नींद नहीं मिल सकती। पुराने आर्य इनके उद्देश्य को समझे हुए थे तभी वे संसार में धर्मात्मा, तपस्वी और सत्य पर चलनेवाले मनुष्य उत्पन्न कर सकते थे। आजकल स्कूलों, कालेजों, बोर्डिङ्ग हाऊसों, विद्यार्थी आश्रमों और अनेक संस्थाओं के होते हुए भी मानव समाज के बच्चे विद्वान् बनाने के लिए यदि कोई सर्वोत्तम साधन था तो वह यह षोडश संस्कार ही थे।

पुराने समय में आर्य्यों में जो षोडश संस्कार प्रचलित थे वह प्रायः आज गृह्यसूत्र नामक कई संस्कृत ग्रन्थों में अङ्कित रह गये हैं। भारतीय आर्य्यों में इस समय केवल उपनयन, विवाह इन्हीं दो संस्कारों का विशेष महत्व देखने में आ रहा है जिसके कारण सारा देश अपने अन्तिम ध्येय मोक्ष से गिर कर अर्थ और काम को अपना अन्तिम ध्येय बना रखा है। जिन महानुभावों को ८४ लाख योनियों से पृथक् पुनः मनुष्य योनि में मृत्यु पश्चात् आने की इच्छा हो अथवा मोक्षाभिलाषियों को स्वयं अथवा अपनी सन्तानों में षोडश संस्कारों का प्रचार कर वेदानुकूल संस्कार कर आनन्द उठावें, जैसा कि मनु० अ० २ श्लो० २६ में कहा है—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनःप्रेत्यचेहच ॥ १ ॥

अर्थ—वैदिक जो पुण्य कर्म हैं उनसे द्विजातियों के तीन वर्णों का (गर्भाधानादि) शरीर संस्कार, जो दोनों लोक में पवित्र करनेवाला है, करना चाहिए। मनु० अ० २ श्लो० २७ में यह भी लिखा है, कि—

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकंगार्भिकंचैनोद्विजानामपमृज्यते ॥ २ ॥

अर्थ—गर्भाधान संस्कार, जातकर्म, चूड़ाकर्म और मौञ्जीबन्धन, इनमें के होमों से द्विज के गर्भ और बीज के दोषादि की शुद्धि होती है।

मनु भगवान् के कथनानुसार द्विजातियों के गर्भाधानादि संस्कार वेद मंत्रों से होने चाहिए क्योंकि इससे शरीर और

आत्मा की शुद्धि अर्थात् संस्कारों के करने से सन्तान शुद्ध, निष्पाप और बड़ी धर्मात्मा होती है। अतएव शरीर, मन और आत्मा की शुद्धि प्रथम संस्कारों द्वारा ही करना आवश्यक है। वास्तविक संस्कारों की चार ही प्रकार की क्रियायें हैं। यथा—

(१) प्रथम शुभ कार्य्यारम्भ में ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना। (२) हवन। (३) प्रतिज्ञा। (४) साक्षी।

संपूर्ण संस्कार यथासंभव द्विजाति होने के निमित्त सब मनुष्यों को स्वयं करना चाहिए। यथाः—

पितैवोपि नयेत्पुत्रं तदभावे पितुर्पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता तदभावतु सोदराः॥

छां० प०

अर्थ—पिता ही पुत्र का उपनयन करे उसकी अनुपस्थिति में पितामह और ज्येष्ठ भ्राता भी करें।

इसीप्रकार अनेक ग्रन्थों में प्रमाण हैं जिनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि संस्कार सबको स्वयं ही करना चाहिए। महाभारत पर्यन्त ऐसी ही प्रथा रही है। स्मरण रहे जो कर्म मनुष्य स्वयं करता है उसी का फल उसे प्राप्त होता है। हां, जिस समय अपनी योग्यता न हो वा अपने कुटुम्बी श्रेष्ठ जनों की नहो बस उसी अवस्था में अन्य प्रतिनिधि (आचार्य्य) द्वारा संस्कार कराना श्रेय है।

अब तक जो अन्य संस्कार विधिएं छपी हैं उनके बीच २ में प्रमाण और शिक्षा सम्बन्धीय बहुत सा लेख हो जाने से कार्य करने में विलम्ब होता था अतएव सर्व साधारण के लाभार्थ आवश्यकीय षोडश संस्कारों की यथोक्त सरल विधि लिखी गई है जो आगे 'षोडश संस्कार विधि' नाम से देखने में आवेगा। इसके द्वारा एक साधारण पढ़ा लिखा मनुष्य पुस्तक हाथ में लेकर बड़ी सुगमता से स्वयं प्रत्येक संस्कार को कर सकता है। जो स्वयं नहीं पढ़ सके वह किसी भी पढ़ेलिखे को बैठाकर कर सकता है।

संस्कार मनुष्य के होते हैं और उनके होने से मनुष्य द्विज कहा जाता है जो द्विजत्व में दक्ष (पास) न हुआ उसी का नाम एक प्रकार से शूद्र है। मनु० अ० १० श्लो० ५६ में लिखा है,कि —

शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तुविद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥

अर्थ—ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त हो जाता है और शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त होजाता है। क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ भी इसी प्रकार और वैश्य से हुआ पुरुष भी अन्यवर्ण को प्राप्त होता जानना चाहिए। आपस्तम्ब के निम्न सूत्रों को देखिए—

धर्मचर्ययाजघन्योवर्णः पूर्वंपूर्वंवर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१॥ अधर्मचर्ययापूर्वो वर्णजघन्यं-जघन्यंवर्णमापद्यतेजाति परिवृत्तौ ॥ २ ॥

अर्थ—धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम उत्तम वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस जिसके योग्य होवे ॥ १ ॥ वैसे अधर्माचरण से पूर्व पूर्व अर्थात् उत्तम उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ २ ॥

यह मनुष्य जाति की योग्य संज्ञाओं का प्रमाण यदि माना जावे तो इसप्रकार से किसी की कुछ हानि नहीं। परन्तु मनुष्य मात्र की एक जाति न मानने से और जन्म से चार वर्णों की व्यवस्था मानने से संसार की बड़ी हानि हुई और है।

समस्त संस्कार पुत्र और कन्या दोनों ही के एक से होने हैं इस समय कन्योपनयन में कुछ विवाद है परन्तु कन्या के उपनयन न होने का कोई निषेधित प्रमाण या कारण नहीं। यज्ञोपवीत ऋण भार का चिन्ह है वह तीनों ऋण (ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण) पुत्र व कन्या दोनों ही पर समान है। गोभिल गृह्य सूत्र में लिखा है, कि :—

प्रावृत्तांयज्ञोपवितिनीमभ्युदानयन्जपेत्सो-
मोऽददद्गन्धर्वायेति" । गो० गृ० सू० प्र० २ का० १

अर्थ—विवाह संस्कार के लिये निश्चित घर में यज्ञोपवीत आभूषण पहिनी हुई स्त्री प्रविष्ट हो और "सोमोऽददन्" इत्यादि मंत्र का उच्चारण करे। यम स्मृत में भी लिखा है कि :—

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।
अध्यापनंच वेदानां सावित्री वाचनं तथा ॥

(यम स्मृ० पराशर माधवे)

अर्थ—पहिले कल्प में स्त्रियां भी ब्रह्मचर्य धारण करती थीं. और मूंज की मेखला पहनती थीं, वेद पढ़ती थीं, और सावित्री गुरुमंत्र का पाठ करती थीं॥ श्री पतञ्जलि ने महाभाष्य में कुछ प्रयोग सिद्ध किये हैं जैसे—शातपथिकी काशकृत्स्ना, उपाध्याया, आचार्याणी इत्यादि जिनका अर्थ है—शतपथ को पढ़ानेवाली स्त्री, काशकृत्स्न आचार्य के बनाये व्याकरण को पढ़नेवाली स्त्री, उपाध्याय का कार्य करनेवाली स्त्री, उपाध्याया, आचार्य्य का कार्य करनेवाली स्त्री आचार्याणी इत्यादि।

स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार—प्राचीन काल में स्त्रियां भी नियम से अग्निहोत्र करती थीं। (शतपथ, काण्ड ११, ४, १,) में प्रजापति ने मित्रवृन्दा को उपदेश दिया है—"यज्ञेनैतान् पुनर्याचस्व"। इनकी याचना तुम यज्ञ द्वारा करो। इसके अतिरिक्त भागवत में मुनि कश्यप अपनी धर्मपत्नी अदिति को कहते हैं—

अप्यग्नयस्तुवेलायांनहुताहविषासति।
त्वयोद्विग्नधियाभद्रे प्रोषितेमयिकर्हिचित्॥

(स्क० ८, अ० ४६)

हे सति! साध्वि! मेरे परदेश में चले जाने पर ठीक समय यज्ञाग्निओं में आहुति डालने में तू ने भूल तो न की थी? इस पर अदिति ने उत्तर दिया है कि—मैं नियम से अग्निहोत्र आदि कार्य करती थी।

महर्षि पाणिनी जी अष्टाध्यायी में १ सूत्र लिखा है, कि **"स्वतंत्र:कर्त्ता"**=अर्थात् कर्त्ता सदैव *स्वतंत्र होता है।

महात्मा तुलसी दास जी का कथन, है कि—

"कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥"

चाहे स्त्री हो वा पुरुष। उपनिषद् में यह भी लिखा है, कि—

"स्वयंकर्मकरोत्यात्मास्वयंतत्फलमश्नुते।
स्वयंभ्रमतिसंसारेस्वयंतस्माद्विमुच्यते॥"

आत्मा स्वयं कर्म करता है, स्वयं फल प्राप्त करता है, स्वयं संसार के योनियों में भ्रमता है और स्वयं उनसे पृथक् होता है।

यह बात सब को ध्यान रखना चाहिए—कि परमात्मा किसी प्राणी को परतंत्र में नहीं करता जीव स्वयं अपनेही कर्मों से परतंत्र होता है। इसलिए जहाँ तक होसके कदापि परतंत्रता को स्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सदैव दुःखही दुःख प्राप्त करता रहेगा।

कर्म का फल या पुनर्जन्म के मानने वालो! इस जन्म व परजन्म में अपने २ कर्मों के फलानुसार भोग वा कर्म योनि प्राप्त करना अवश्यम्भावी है अतएव मनुष्य मात्र को षोडश-संस्कार जन्म सिद्ध अधिकार मानकर स्वयं करना व कराना चाहिए ऐसा होने से चाहे किसी मनुष्य का किसीके गृहमें जन्म होगा पुनः वह अपना सुधार संस्कारोंके द्वारा कर सकेगा। क्योंकि सब मनुष्यों की जाति एकही है भेद केवल स्त्री पुरुष का ही है। वर्ण सब समान हैं उत्तम मध्यम नहीं। क्योंकि चार वर्णोंका सम्बन्ध राजनैतिक व्यवस्था से है जैसे चार आश्रमों का सम्बन्ध धर्म से है। सभी मनुष्य ऋषि सन्तान हैं और वर्ण संकरत्व

कोई सिद्ध नही। "द्रष्टव्य"— प्रत्येक संस्कार में कन्याओं का आचार्य्य स्त्री और पुत्रोंके संस्कार में पुरुष को आचार्य्य करना उत्तम जानना चाहिए।

संस्कार का दिवस—प्रथम से नियत कर लेना चाहिए। विवाह और गर्भाधान रात्रि में। जातकर्म और अन्त्येष्टि जब आवश्यकता पड़े शेष सब संस्कारों का प्रातः कालही समय उत्तम है।

हवनकासाकल्य—चार प्रकार की वस्तुओं से युक्त होना चाहिए। १ सुगन्धित, २ रोग नाशक, ३ मिष्ट, ४ पुष्टि कारक, यज्ञ के पात्र गृहस्थी के पात्रों से भिन्न प्रकार के होना चाहिए। समिधा (लकड़ी) आम, पलासादि की हलकी और सूखी हों, घुनी सड़ी न हों। हवनकुण्ड घर के योग्यस्थान में जिस प्रकार न्यूनाधिक होम करना हो बनावे। ३२ अँगुल लम्बा चौड़ा ऊपर हो तो १६ अंगुल गहिरा और ८ अंगुल नीचे हो। कुण्ड के समीप एक जल कलस भर कर रखना चाहिए इसका प्रयोजन अग्नि से रक्षार्थ। उस यज्ञशाला भूमि को शुद्ध मिट्टी आदि से लेपन कर यथावश्यक पुष्प पत्रादि से सुसज्जित कर लेना चाहिए। एक दिवस प्रथम से सम्पूर्ण हवनादि की वस्तुवें एकत्रित कर लेवे। होम समय होनादि सहायक कुटुम्बी परोसी तथा मित्रों से जो प्रेम पूर्वक निर्लोभता से सहायता दे सकें एक दो अथवा तीन पुरुष जिस प्रकार न्यूनाधिक सामग्री होम करना हो आहुति देने को नियत कर लेवे अर्थात् बैठा लेवे। निर्धनता के कारण संस्कार का प्रचार उठ गया है अतएव जहाँ तक होसके खर्च की न्यूनताही पर ध्यान रखना चाहिए। भोजन के अन्न मात्र से भी होम कर संस्कार किए

जा सकते हैं सो अवश्य करना चाहिए किन्तु त्यागना उचित नहीं।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति। विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥ मनु० अर्थ—जल और मिट्टी से ऊपर के अंगों की शुद्धि होती है, मन की शुद्धि सत्य मानने, बोलने और सत्य कार्य करने से होती है-विद्या तप से आत्मा की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि यथार्थ ज्ञान से होती है।

जिसके संस्कार होते हैं वही मनुष्य इन चारो प्रकार से शुद्ध हो सकता है इसके विपरीत कोई किसी प्रकार से भी शुद्ध कहलाने के योग्य नहीं। जहाँ २ मंत्र के अन्त में "इदन्नमम" शब्द आवे वहाँ २ श्रुवे से आहुति देकर एक २ बिन्दु घृत का किसी जल पात्र में टपकाता जावे उसको अवभाग कहते हैं जिसका आचमन हवन की समाप्ती पर किया जाता है।

विशेष होम करने में मंत्रों की न्यूनता समझें तो गायत्री से १ लक्ष तक आहुति देने की विधि है।

पूर्व काल में संस्कारों के रोजगारी नहीं थे अब रोजगारियों को कठिनता ही प्यारी है अतएव इस सलिलता पर वे गुर्रावेंगे मिथ्याक्षेप कर भड़कावेंगे उनकी बातों पर संस्कार प्रिय सज्जन ध्यान न दें और अपना आनन्द मंगल स्वयं करके अलभ्य लाभ करें॥ शमित्योम्।

कार्तिक १९८१ वि० { अभयानन्द सरस्वती,
काशी।

संस्कारविधि के कार्य्यक्रम की सूची ।

॥ सामान्यविधि के कार्य्य ॥

१—ईश्वरस्तुति प्रार्थना ६७ मंत्रों से ।
२—आचमन ३ मंत्रों से ।
३—इन्द्रियस्पर्शः १ मंत्र से ।
४—मार्जन जलसे करना मंत्र १ ।
५—अग्नि उत्पन्न करना मंत्र १ से ।
६—कुण्ड में अग्नि स्थापन मंत्र १ से ।
७—प्रज्वलित अग्नि पंखे से मंत्र १ ।
८—समिधाधान ३ मंत्रों से ।
९—घृताहुति ५ मंत्र १ से ।
१०—जल सेंचन ४ मंत्रों से ।
११—आघारा० और आ० आ० ८ मंत्र ८ ।
१२—स्विष्टकृताहुति १ मंत्र १ ।
१३—प्राजापत्याहुति १ मंत्र १ ।
१४—सब साकल्याहुति १२ मंत्र १२ ।
१५—पूर्णाहुति ३ मंत्र १ ।
१६—मङ्गलाचरण ६ मंत्रों से मंत्र ६ ।

१—गर्भाधानकार्य्य ।

१—विशेषाहुति ६ मंत्र ६ ।
२—ईश्वर ध्यान मंत्र १ ।

३—कुण्ड की प्रदक्षिणा और नमस्ते ।
४—अन्नभाग स्नान ।
५—गर्भ स्थापनः ।

२—पुंसवनकार्य्य ।

१—बिशेषाहुतें २ मंत्र २ ।
२—गर्भ रक्षार्थ प्रार्थना मंत्र २ ।

३—सीमन्तकार्य्य ।

१—विशेषाहुतें ४ मंत्र ४ ।
२—गर्भ रक्षार्थ प्रार्थना मंत्र १
३—माङ्गलिक वचन बोलना मंत्र १

४—जातकर्म कार्य्य ।

१—नाडी छेदन और स्नान ।
२—घृत मधु प्राशन ३ मंत्रों से ।
३—वेद मंत्र श्रवण कराना मंत्र १३ ।
४—शिर को आघ्राण (सूंघना) मंत्र ३ ।
५—दुग्ध पान कराना मंत्र १ ।

५—नामकरणकार्य्य ।

१—नाम रखना ।
२—सन्तान को शुभ बोलना ।

६—निष्क्रमणकार्य्य ।

१—प्रार्थना पूर्वक घर से निकालना ।
२—सन्तान को भ्रमण आरम्भ करना ।

७—अन्नप्राशनकार्य्य।

१—विशेषाहुतें ४ मंत्र ४।
२—अन्नप्राशन मंत्र १।
३—शुभ बोलना।

८—चूड़ाकर्मकार्य्य।

१—ईश्वर प्रार्थना करता हुआ।
२—केश छेदन करना।

९—कर्णवेधकार्य्य।

१—प्रार्थना पूर्वक वेध करना मंत्र २।

१०—उपनयनकार्य्य।

१—यज्ञोपवीत धारण कराना मंत्र २।
२—विशेषाहुतें ५ मंत्र ५।
३—यज्ञोपवीत पर शिक्षा।

११—वेदारम्भकार्य्य।

१—अवभागस्पर्शः मंत्र ७।
२—यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा।
३—गायत्री मंत्रोपदेशः।
४—ब्रह्मचर्य भेष धारण।
५—पिता पुत्र की प्रतिज्ञायें।
६—ब्रह्मचर्योपदेशः।
७—शिक्षा स्वीकार।
८—भिक्षा दान प्राप्त।
९—विशेषाहुतें ११ मंत्र ३।
१०—आधारावाज्यादि आहुतें ८

११—भोजन कराना ब्रह्मचारी को ।
१२—यात्रा समय का नमस्ते ।
१३—उपस्थितों का शुभ बोलना ।

१२—समावर्तनकार्य्य ।

१—स्नान ३ मंत्रों से कराना ।
२—भेषत्याग ।
३—वस्त्र धारण कराना मंत्र २ ।
४—अलंकारादि धारण कराना मंत्र ६ ।
५—गो आदि ग्रहण ब्रह्मचारी को ।
६—गृहाश्रमादि की स्वीकृति ।
७—कृतज्ञतार्थ भाषण ।

१३—विवाह (गृहाश्रम) कार्य्य ।

१—वाक्‌दान माता पिता का ।
२—कन्या वर का वाक् दान ।
३—विवाहोत्सव ।
४—तृतीय विवाहोत्सव ।
५—मण्डप में विवाह कार्य्य—
(१) उपस्थिति ।
(२) सूचना पत्र का पढ़ा जाना ।
(३) सामान्यविधि होम ।
(४) पाणिग्रहण ।
(५) जयमाल का पड़ना ।
(६) वर की प्रतिज्ञाएं ।
(७) वधू की प्रतिज्ञाएं ।
(८) विशेषाहुतें ११ मंत्र ११ ।
(९) फेरे (भावरें) ४ मंत्र २ ।

(१०) धानी की अहुति १ मंत्र २ ।
(११) मिश्रित प्रतिज्ञा वाक्य दोनों के ।
(१२)विसर्जन—प्रार्थना ।
(१३) नमस्ते दोनों की सब से ।
(१४) वस्त्राभूषण धारण ।
(१५) विदा विदाई ।
६—गृहाश्रमोपदेशः ।
७—पुनर्विवाहविधिः ।

१४—वानप्रस्थाश्रमकार्य्य ।

१—विशेषाहुतें ४० ।
२—भार सोंपना पुत्रादि को ।
३—प्रतिज्ञा करनी ।
४—नमस्ते और विदा विदाई ।

१५—संन्यासाश्रम कार्य्य ।

१—विशेषाहुतें ८ मंत्र ८ ।
२—रिण भार चिन्ह त्याग ।
३—प्रतिज्ञा करना ।
४—अन्तिम विदाई और नमस्ते

१६—अन्त्येष्टिकर्मकार्य्य ।

१—स्नान कराना ।
२—चिता चुनना ।
३—अग्न्याधान ।
४—विशेषाहुतें १०० ।
५—गृहमें हवन करना ।
६—भस्म लोप करना ।

* ओ३म् *

॥अथ षोडश संस्कार विधिः॥

(यह सामान्यक्रियाविधि सम्पूर्ण संस्कारों में प्रथम करे)

❁ ईश्वरस्तुतिप्रार्थना ❁

यह पाठ कार्य्यकर्त्ता (गृहपति) करे और उपस्थित जन शान्त चित्त सुनें।

१—ओ३म् विश्वानिदेवसवितर्दुरितानिपरासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ य० वे० अ० ३० मं ३॥

[अर्थ]—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्य्य युक्त शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर हमारे दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करके कल्याण कारण गुण कर्म स्वभाव और पदार्थों को प्राप्त कराइये।

२—हिरण्यगर्भःसमवर्त्तताग्रे भूतस्यजातःपतिरेकआसीत्। सदाधारपृथिवींद्यामुतेमांकस्मैदेवाय हविषाविधेम॥ य० वे० अ० १३ मं ४॥

[अर्थ]—जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य्यादि लोकों को उत्पन्न करके धारण किए हैं जो सम्पूर्ण जगत् का स्वामी चैतन्यस्वरूप जिसके गर्भरूप में सारे लोक लोकान्तर स्थित हैं हम सब उसे सुख स्वरूप शुद्ध परमात्मा की प्राप्ति हेतु योगाभ्यासादि उत्तम कर्मों से भक्ति करते रहें।

३—यआत्मदाबलदायस्यविश्वउपासते प्रशिषं यस्यदेवाः। यस्यच्छायाऽमृतंयस्यमृत्युः कस्मैदेवाय हविषाविधेम॥ य० २५। मं १३

अर्थ—जो आत्मज्ञान का दाता शरीरात्मा और समाज के बल का देनेहारा जिसकी उपासना समस्त विद्वान् ज्ञानी तथा योगी करते हैं जिसके सत्यस्वरूप शासन अर्थात् न्यायरूपी शिक्षा को मानते हैं। जिसका आश्रय ही अमृतवत् मोक्ष सुखदायक है। जिसका न मानना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है इससे हम सब सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥

४—यः प्राणतोनिमिषतोमहित्वैकइद्राजाजगतो-बभूव । यईशेऽअस्यद्विपदश्चतुष्पदः कस्मैदेवाय हविषाविधेम ॥ य० २३ । मं ३ ॥

अर्थ—जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का पति [स्वामी] वही एक राजा विराजमान है। जो दो पैर वाले मनुष्य और चार पैर वाले गौ आदि प्राणियों के शरीरों की रचना करता है उस परमेश्वर की यथावत भक्ति करें ॥

५—येनद्यौरुग्रापृथिवीचदृढायेनस्वः स्तभितंयेन-नाकः । योअन्तरिक्षेरजसोविमानः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥ य० ३२ । मं ६ ॥

अर्थ—जिसने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य्यादि लोकों को और दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है। जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे ही सब लोक लोकान्तरों को स्थित किए हुवे भ्रमण कराता है हम सब उस सुखदायक कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए विशेष भक्ति करें ॥

६—प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरि-

माबभूव । यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोअस्तुवयं स्याम पतयोरयीणाम् ॥ ऋ० वे० १० । १२१ । १०

अर्थ—हे सब प्रजा के स्वामी आप से भिन्न दूसरा कोई भी जन्ममरणादि दुःखों से छुड़ानेवाला नहीं है । हम सब जिस २ शुद्ध कामनावाले होवें और वाञ्छा करें वह सब सिद्ध होवे जिससे धनादि ऐश्वर्य्य से युक्त होकर किसी प्रकार से दुखी न हों ॥

७—सनोबन्धुर्जनितासविधाताधामानिवेदभुवनानिविश्वा । यत्रदेवाअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ य० ३२ । मंत्र १० ॥

अर्थ—हे मनुष्यो वह ईश्वर अपने लोगों को भ्राता के समान सब को सुखदाता सकल कामों का पूर्ण करने हारा नाम स्थान जन्मों का दाता सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त है वही परमात्मा अपना गुरु, राजा और न्यायधीश है इसलिए सदा उसी के आज्ञाकारी रहें ॥

८—अग्नेनयसुपथारायेअस्मान्विश्वानिदेववयुनानिविद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनोभूयिष्ठान्ते नमउक्तिंविधेम ॥ य० ४० । मंत्र १६ ॥

अर्थ—हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर आप हम सब मनुष्यों को अपना वह विज्ञान देवें जिससे हम सब एक दूसरे के बन्धुवत् प्रेम से सहायक होते हुवे आपही की आज्ञा में रहें और अच्छे धर्मयुक्त सत्यमार्ग तथा उत्तम कर्मों को प्राप्त होकर सर्वदा आनन्द में ही रहें ।

* इति *

❀ अथ स्वस्तिवाचनम् ❀

९—अग्निमीडेपुरोहितंयज्ञस्यदेवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋग्वेद मं० १ सू १ मं १ ॥ १०—सनःपितेवसूनवेऽग्ने सूपायनोभवसचस्वानःस्वस्तये॥ ११ स्वस्तिनोमिमीतामश्विनाभगःस्वस्तिदेव्यदितिरनर्वणः । स्वस्तिपूषाअसुरोदधातुनःस्वस्तिद्यावापृथिवीसुचेतुना ॥ १२--स्वस्तयेवायुमुपब्रवामहैसोमंस्वस्ति भुवनस्ययस्पतिः । बृहस्पतिंसर्वगणंस्वस्तयेस्वस्तयआदित्यासोभवन्तुनः ॥ १३—विश्वेदेवानोअद्यास्वस्तयेवैश्वानरोवसुरग्निःस्वस्तये। देवाअवन्त्वृभवःस्वस्तयेस्वस्तिनोरुद्रःपात्वंहसः ॥ १४—स्वस्तिमित्रावरुणास्वस्तिपथ्येरेवति । स्वस्तिन इन्द्रश्चाग्निश्चस्वस्तिनोअदितेकृधि ॥ १५—स्वस्तिपन्थामनुचरेमसूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताघ्नता जानतासङ्गमेमहि ॥ १६—येदेवानांयज्ञियायज्ञियानां मनोर्यजत्राअमृताऋतज्ञाः । तेनोरासन्तामुरुगाय मद्ययूयंपातस्वस्तिभिःसदानः ॥ १७—येभ्योमाता मधुमत्पिन्वतेपयःपीयूषंद्यौरदितिरद्रिबर्हाः । उक्थशुष्मान्वृषभरान्स्वप्नसस्ताँआदित्याँ अनुमदा

स्वस्तये ॥ १८ ॥ नृचक्षसोअनिमिषन्तोअर्हणा बृहद्देवासोअमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथाअहिमाया अनागसोदिवोवर्ष्माणंवसतेस्वस्तये ॥ १९ ॥ सम्राजो येसुवृधोयज्ञमाययुरपरिह्वृतादधिरेदिविक्षयम्। तां आविवासनमसासुवृक्तिभिर्महो आदित्यांअदितिं स्वस्तये ॥ २० ॥ कोवःस्तोमंराधतियंजुजोषथविश्वे देवासोमनुषोयतिष्ठन। कोवोऽध्वरंतुविजाताअरं करद्योनःपर्षदत्यंहःस्वस्तये ॥२१॥ येभ्योहोत्रांप्रथ-मामायेजेमनुःसमिद्धाग्निर्मनसासप्त होतृभिः। त आदित्याअभयंशर्मयच्छत सुगानःकर्तसुपथा स्वस्तये। ॥२२॥ यईशिरेभुवनस्यप्रचेतसोविश्वस्यस्थातुर्जगत-श्चमन्तवः। तेनःकृतादकृतादेनसस्पर्यद्यादेवासः पिपृतास्वस्तये ॥ २३ ॥ भरेष्विन्द्रंसुहवंहवामहेऽ-होमुचंसुकृतंदैव्यंजनम्। अग्निमित्रंवरुणंसातये भगंद्यावापृथिवीमरुतःस्वस्तये ॥ २४ ॥ सुत्रामाणं पृथिवींद्यामनेहसंसुशर्माणमदितिंसुप्रणीतिम्। दैवींनावंस्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमास्वस्त-ये ॥ २५ ॥ विश्वेयजत्राअधिवोचतोतयेत्रायध्वं नो दुरेवायाअभिह्रुतः। सत्ययावोदेवहूत्याहुवेमशृण्व-तोदेवाअवसेस्वस्तये ॥ २६ ॥ अपामीवामपविश्वा-

मनाहुतिमपारातिंदुर्विदत्रामघायतः । आरेदेवाद्वे-
षोअस्मद्युयोतनोरुणःशर्मयच्छतास्वस्तये ॥ २७ ॥
अरिष्टःसमर्तोविश्वएधतेप्रप्रजाभिर्जायतेधर्मणस्प-
रि । यमादित्यासोनयथासुनीतिभिरतिविश्वानि
दुरितास्वस्तये ॥ २८ ॥ यंदेवासोऽवथवाजसातौयं
शूरसातामरुतोहितेधने । प्रातर्यावाणंरथमिन्द्र
सानसिमरिष्यन्तमारुहेमास्वस्तये ॥ २९ ॥ स्वस्ति
नःपथ्यासुधन्वसुस्वस्त्यप्सुवृजनेस्वर्वति । स्वस्ति
नःपुत्रकृथेषुयोनिषुस्वस्तिरायेमरुतोदधातन ॥३०॥
स्वस्तिरिद्धिप्रपथेश्रेष्ठारेक्णस्वत्यभियावामसेति ।
सानोअमासोअरणेनिपातुस्वावेशाभवतुदेवगोपाः ॥
ऋ० वे० मं० १० सू० ६३ ॥ ॥ ३१ ॥ इषेत्वोर्ज्जेत्वा
वायवस्थदेवोवः सवितापार्पयतुश्रेष्ठतमायकर्मणआ-
प्यायध्वमघ्न्याइन्द्रायभागं प्रजावतीरनमीवा
अयक्ष्मामावस्तेनईशतमाघशꣳसोध्रुवाअस्मिन्
गोपतौस्यातबह्वीर्यजमानस्यपशून्पाहि ॥ ३२ ॥
आनोभद्राःक्रतवोयन्तुविश्वतोऽदब्धासोअपरीतास
उद्भिदः।देवानोयथासदमिद्वृधेअसन्नप्रायुवोरक्षितारो
दिवेदिवे ॥३३॥ देवानांभद्रासुमतिर्ऋजूयतांदेवानाꣳ
रातिरभिनोनिवर्त्तताम् । देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा

वयंदेवानआयु:प्रतिरन्तुजीवसे ॥ ३४ ॥ तमीशानं
जगतस्तस्थुषस्पतिंधियंजिन्वमवसेहूमहेवयम् ।
पूषानो यथा वेदसामसद्वृधेरक्षितापायुरदब्ध:स्व-
स्तये ॥ ३५ ॥ स्वस्तिनइन्द्रोवृद्धश्रवा:स्वस्तिन:पूषा
विश्ववेदा: । स्वस्तिनस्ताक्ष्र्योअरिष्टनेमि:स्वस्ति
नोबृहस्पतिर्दधातु ॥ ३६ ॥ भद्रंकर्णेभि:शृणुयाम
देवाभद्रंपश्येमाक्षभिर्यजत्रा: । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा
ᳪसस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंयदायु: ॥ य० अ० २५
मं १४ । १५ । १८ । १९ । २१ ॥ ३७ ॥ अग्नआयाहिवीतये
गृणानोहव्यदातये । निहोतासत्सिबर्हिषि ॥ ३८ ॥
त्वमग्नेयज्ञानाᳪहोताविश्वेषाᳪहित: । देवेभिर्मानुषे
जने ॥ सामवेद ॥ ३९ ॥ येत्रिषप्ता:परियन्तिविश्वा
रूपाणिबिभ्रत: । वाचस्पतिर्बलातेषांतन्वोअद्य
दधातुमे ॥ अथर्व० ॥ ४० ॥

❁ अथशान्तिपाठः ❁

शन्नइन्द्राग्नीभवतामवोभि:शन्नइन्द्रावरुणारातहव्या ।
शमिन्द्रासोमासुविताथशंयो:शन्नइन्द्रापूषणावाज
सातौ ॥४१॥ शन्नोभग:शमुन:शंसोअस्तुशन्न: पुरन्धि:
शमुसन्तुराय: । शन्न:सत्यस्यसुयमस्यशंस:शन्नोअर्य-

मापुरुजातोअस्तु ॥४२॥ शन्नोधाताशमुधर्त्तानोअस्तु-
शन्नउरूचीभवतुस्वधाभिः। शंरोदसीबृहतीशंनोअ-
द्रिशंनोदेवानांसुहवानिसन्तु ॥४३॥ शन्नोअग्निर्ज्यो-
तिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विनाशम् ।
शन्नःसुकृतां सुकृतानिसन्तु शन्नइषिरोअभिवातुवातः
॥ ४४ ॥ शन्नोद्यावापृथिवीपूर्वहूतौशमन्तरिक्षंदृशये
नोअस्तु । शंन ओषधीर्वनिनोभवन्तुशंनोरजसस्प-
तिरस्तु जिष्णुः ॥ ४५ ॥ शन्नइन्द्रोवसुभिर्देवो अस्तु
शमादित्येभिर्वरुणःसुशंसः । शंनोरुद्रोरुद्रेभिर्जलाषः
शंनस्त्वष्टाग्नाभिरिहशृणोतु ॥ ४६ ॥ शंनःसोमोभवतु
ब्रह्मशंनःशंनोग्रावाणःशमुसन्तुयज्ञाः । शंनःस्वरूणां
मितयोभवन्तुशंनःप्रस्वः शम्वस्तुवेदिः ॥ ४७ ॥ शंनः
सूर्यउरुचक्षा उदेतुशंनश्चतस्त्र प्रदिशोभवन्तु । शंनः
पर्वताध्रुवयोभवन्तुशंनःसिन्धवःशमुसन्त्वापः॥४८॥
शंनोअदितिर्भवतुव्रतेभिःशंनोभवन्तु मरुतःस्वर्क्काः ।
शंनोविष्णुः शमुपूषानो अस्तुशनो भवित्रंशम्वस्तु
वायुः॥४९॥ शंनोदेवःसवितात्रायमाणःशंनोभवन्तू-
षसो विभातीः । शंनोपर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यःशंनः
क्षेत्रस्यपतिरस्तुशम्भुः ॥ ५० ॥ शंनोदेवा विश्वदेवा
भवन्तुशंसरस्वतीसहधीभिरस्तु। शमभिषाचःशमु-

शान्तिषाचः शंनोदिव्याः पार्थिवाःशन्नोअप्याः ॥५१॥
शंनःसत्यस्यपतयेभवन्तुशंनोअर्वन्तःशमुसन्तुगा-
वः। शंनऋभवःसुकृतःसुहस्ताःशंनोभवन्तुपितरोह-
वेषु ॥ ५२ ॥ शंनोअज एकपाद्देवोअस्तुशंनोऽहिर्बु-
ध्न्यः शंसमुद्रः। शंनोअपां नपात्पेरुरस्तुशंनःपृश्नि-
र्भवतुदेवगोपाः ॥ ऋ० वे० ५३ ॥ इन्द्रोविश्व
स्यराजति। शनोअस्तु द्विपदे शंचतुष्पदे ॥ ५४ ॥
शन्नोवातःपवताँ शंनस्तपतुसूर्य्यः। शंनःकनिक्रद-
द्देवःपर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ ५५ ॥ अहानिशंभवन्तुनः
शँरात्रीःप्रतिधीयताम्। शंनइन्द्राग्नी भवतामवो-
भिःशंन इन्द्रावरुणा रातहव्या। शंनइन्द्रा पूषणा
वाजसातौशमिन्द्रासोमासुविताय शंयोः ॥ ५६ ॥ शं
नोदेवीरभिष्टयआपोभवन्तुपीतये। शंय्योरभिस्रव-
न्तुनः ॥ ५७ ॥ द्यौःशान्तिरन्तरिक्षँशान्तिःपृथिवी
शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ ५८ ॥ तच्चक्षुर्देवहितं
पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदः
शतँ शृणुयामशरदःशतंप्रब्रवामशरदःशतमदीनाः
स्यामशरदःशतंभूयश्चशरदःशतात् ॥ य० ३६।८।१०।

११।१२।१७।२४ ॥५८॥ यज्जाग्रतोदूरमुदैतिदैवंतदुसुप्त-
स्यतथैवैति । दूरङ्गमंज्योतिषांज्योतिरेकन्तन्मेमनः
शिवसंकल्पमस्तु॥ य० अ० ३४ मंत्र १ ॥६०॥ येनकर्मा-
ण्यपसोमनीषिणोयज्ञेकृण्वन्तिविदथेषुधीराः । यद·
पूर्वंयक्षमन्तःप्रजानांतन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु ॥य०
३४मंत्र२॥६१॥यत्प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्चयज्ज्योतिर-
न्तरमृतंप्रजासु । यस्मान्नऋतेकिञ्चनकर्मक्रियतेतन्मे
मनःशिवसंकल्पमस्तु ॥ य० ३४ मंत्र ३ ॥६२॥ येनेदं
भूतंभुवनंभविष्यत्परिगृहीतममृतेनसर्वम् । येनयज्ञ-
स्तायतेसप्तहोतातन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु ॥ य०
३४ मंत्र ४ ॥६३॥ यस्मिन्नृचःसामयजूँषि यस्मिन्
प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँसर्व-
मोतंप्रजानांतन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु ॥ य० ३४ मंत्र
५ ॥६४॥ सुषारथिरश्वानिवयन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशु·
भिर्वाजिनइव । हृत्प्रतिष्ठंयदजिरंजविष्ठंतन्मेमनः
शिवसंकल्पमस्तु ॥ य० ३४ मंत्र ६ ॥६५॥ सनःपवस्व
शंगवेशंजनायशमर्वते । शंराजन्नोषधीभ्यः ॥
सा० उ० १ । १ ॥ ६६ ॥ अभयं नः करत्यन्तरिक्षम-
भयंद्यावापृथिवीउभेइमे । अभयंपश्चादभयंपुरस्ता-
दुत्तरादधरादभयंनोअस्तु ॥६७॥ अभयंमित्रादभयम-

मित्रादभयंमित्रादभयंपरोक्षात्। अभयंनक्तमभयंदिवानः सर्वाआशाममममित्रंभवन्तु ॥ अ० वे० ॥ कां० १९ सू० १५ मं० ५। ६ ॥

* इति *

अब सामान्य हवन यज्ञ विधि करे। कार्य-कर्त्ता अपने २ जलपात्र में से आचमन इन्द्रिय स्पर्श मार्जनादि करें।

१—आचमन तीन ॥ ओंअमृतोपस्तरणमसि स्वाहा १, ओंअमृतापिधानमसिस्वाहा २ ओं सत्यंयशःश्रीर्मयिश्रीःश्रयतांस्वाहा ३। २—इन्द्रिय स्पर्शमंत्रः ॥ ओंवाङ्मऽआस्येऽस्तु १, ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु २, ओं अक्ष्णोर्मेचक्षुरस्तु ३, ओंकर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ४, ओंबाह्वोर्मेबलमस्तु ५, ओंऊर्वोर्मेऽ-ओऽजोऽस्तु ६ ॥

(मुख, नासिका, नेत्र, श्रोत्र, बाहु, आदि अंगों का स्पर्श करे)

३—मार्जनमंत्रः ॥ ओं अरिष्टानिमेऽङ्गानि तनूस्तन्वामेसहसन्तु ॥ (सब अङ्गों पर जल छिड़क लेवे) ४—अग्निउत्पन्नमंत्रः ॥ ओं भूर्भुवःस्वः। कपूर जलावे

५—अग्निस्थापनमंत्रः ॥ ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ (कपूर जला कुण्ड में धरे) ६—[पंखे से] अग्निप्रज्वलनमंत्र—ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयंच । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

छोटी २ तीन समिधा [लकड़ी] घृत में डुबाकर एक २ मंत्र से स्वाहा करे ।

७—समिधाधानमंत्रः—(१) ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम । (२) सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम (३) तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥

८—[पांच घृताहुतें निम्न मन्त्र से पांचबार बोल २ कर देवे]

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्ना-

घ्येनसमेधयस्वाहा ॥ इदमग्नयेजातवेदसेइदन्नमम ॥

९—जल सेंचन मंत्रः—कुन्ड के चारों ओर जल छिड़के।

ओंअदितेऽनुमन्यस्व (पूर्व)। ओंअनुमतेऽनुमन्यस्व (पश्चिम)। ओंसरस्वत्येऽमन्यस्व (उत्तर)। ओं-देवसविः प्रसुवयज्ञंप्रसुवयज्ञपतिंभगाय। दिव्योगन्धर्वः केतपूःकेतन्नःपुनातुवाचस्पतिर्वाचंनःस्वदतु (इससे चारो तरफ) ॥

१०—आधारावाज्य और आज्यभागाहुती आठ ॥

ओंअग्नयेस्वाहा। इदमग्नये-इदन्नमम ॥ ओं सोमायस्वाहा। इदंसोमायइदन्नमम ॥ ओं प्रजापतयेस्वाहा। इदंप्रजापतयेइदन्नमम ॥ ओंइन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय-इदन्नमम ॥ ओं भूरग्नये-स्वाहा। इदमग्नये-इदन्नमम ॥ ओंभुववार्यवेस्वाहा। इदंवायवे-इदन्नमम ॥ ओंस्वरादित्यायस्वाहा। इदमादित्याय-इदन्नमम ॥ ओंभूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यःस्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः-इदन्नमम ॥

११—स्विष्टकृताहुति एक। [भात, हलवा या घृत को]

ओं यदस्यकर्मणोऽत्यरीरिचंयद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वंस्विष्टंसुहुतंकरो-

तुमे । अग्नयेस्विष्टकृतेसुहुतहुतेसर्वप्रायश्चित्ताहु-
तीनांकामानांसमर्द्धयित्रेसर्वान्नःकामान्त्समर्द्धयस्वा-
हा ॥ इदमग्नयेस्विष्टकृते इदन्नमम ॥ १२—प्रजाप-
त्याहुतिघृतकीएक ॥ ओं प्रजापतयेस्वाहा ॥ इदंप्र-
जापतये इदन्नमम ॥ १३-होमाहुतेंसर्वसाकल्यसहित
१२ ॥ (१) ओं भूर्भुवःस्वः । अग्नआयूंषिपवआसुवो
र्ज्जमिषंचनः । आरेबाधस्वदुच्छुनांस्वाहा ॥ इद-
मग्नयेपवमानाय इदन्नमम ॥ ऋ० ८ । ६६ । १९(२)
ओं भूर्भुवःस्वः । अग्निर्ऋषिःपवमानःपाञ्चजन्यःपुरो-
हितः । तमीमहेमहागयंस्वाहा ॥ इदमग्नयेपवमा-
नाय इदन्नमम ॥ ८ । ६६ । २० (३) ओं भूर्भुवः
स्वः । अग्नेपवस्वस्वपाअस्मेवर्चःसुवीर्यम् । दध-
द्रयिंमयिपोषंस्वाहा ॥ इदमग्नयेपवमानायइदन्न
मम ॥ ६६ । २१ (४) ओं भूर्भुवःस्वः । प्रजापतेन
त्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरितावभूव । यत्का-
मास्तेजुहुमस्तन्नोअस्तुवयं स्यामपतयोरयीणांस्वा-
हा ॥ इदंप्रजापतयेइदन्नमम ॥ अष्टाज्याहुतें (५)
ओंत्वन्नोअग्नेवरुणस्यविद्वान्देवस्यहेडोऽअवयासि-
सीष्ठाः । यजिष्ठोवह्नितमःशोशुचानोविश्वाद्वेषांसि
प्रमुमुग्ध्यस्मत्स्वाहा ॥ इदमग्निवरुणाभ्यामिदन्न-

मम ॥ (६) ओं सत्वन्नोअग्नेऽवमोभवोतीनेदिष्ठो· अस्याउषसोव्युष्टौ । अवयक्ष्वनोवरुणंरराणोवीहि· मृडीकंसुहवोनएधिस्वाहा ॥ इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्नमम ॥ ऋ॰ ४ । १ । ४ । ५ (७) ओं इमंमेव· रुण श्रुधी हवमद्याचमृडय । त्वामवस्युराचकेस्वा· हा ॥ इदंवरुणायइदन्नमम ॥ (८) ओं तत्वायामि ब्रह्मणावन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः । अहेडमानोवरुणेहबोध्युरुशंसमान आयुःप्रमोषीः· स्वाहा ॥ इदंवरुणायइदन्नमम ॥ ऋ॰ । २४ । ११ (९) ओं येतेशतंवरुणयेसहस्रंयज्ञियाःपाशावितता· महान्तः । तेभिर्नोऽअद्यसवितोतविष्णुर्विश्वेमुञ्च· न्तुमरुतः स्वर्काःस्वाहा ॥ इदंवरुणायसवित्रेविष्णवे विश्वेभ्योदेवेभ्योमरुद्भ्यःस्वर्केभ्यः इदन्नमम ॥ (१०) ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वम· यासि । अयानोयज्ञंवहास्ययानोधेहिभेषजं स्वा· हा ॥ इदमग्नयेअयसेइदन्नमम ॥ (११) ओं उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमंविमध्यमंश्रथाय । अथावय· मादित्यव्रतेतवानागसोऽदितयेस्यामस्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितयेच इदन्नमम ॥ ऋ॰ १।२४।१५ (१२) ओं भवतन्नःसमनसौसचेतसावरेपसौ।

मायज्ञꣳहिꣳसिष्टंमायज्ञपतिंजातवेदसौशिवौ भ-
वतमद्यनःस्वाहा॥इदंजातवेदोभ्यांइदन्नमम॥यजु०
अ० ५ मं०३॥१४-पूर्णाहुतिः३। ओं सर्वंवैपूर्णꣳस्वाहा॥
सा० हवन समाप्त॥१५-मंगलाचरण[अवसामवेदोक्तवा-
मदेव्य गानकरे] [१] ओंभूर्भुवःस्व। कयानश्चित्र-
आभुवदूतीसदावृधःसखा। कयाशचिष्ठयावृता॥ [२]
ओ भूर्भुवःस्वः। कस्त्वासत्योमदानांमꣳहिष्ठोमत्स-
दन्धस। दृढाचिदारुजेवसु ॥ [३] ओंभूर्भुवः
स्वः। अभीषुणःसखीनामविताजरितृणाम्। शत-
म्भवास्यूतये ॥ [महावामदेव्य] [४] काऽ५या।
नश्चा३इत्रा३आभुवात्। ऊ। ती सदा वृधः
सखा। औ३ होहाइ। कया२३ शचाई। ष्ठयौहो३
हुम्मा२। वा२र्तो३ऽ५हाइ॥ [५] काऽ५स्त्वा।
सत्यो३ मा३ दानाम्। मा। हिष्ठोमात्सादन्धः।
सा। औ३ होहाइ। दृढ३ चिदा। रुजोहो ३।
हुम्मा२ वाऽ। सो३ऽ५ हायि॥ [६] आऽ५ भी।
षुणा३ सा३ खीनाम्। आ। विता जरायितृ।
णाम्। औ२३ होहायि। शता२३ म्भवा। सियौ-
हो ३। हुम्मा २ ताऽ२ यो३ऽ५ हायि॥ सा०
उ०॥ अ० १ खं० ३ मंत्र १। २। ३॥

* इतिसामान्यक्रियाविधिः *

॥१॥ गर्भाधानसंस्कारविधिः॥

सब संस्कारो में उक्त सामान्यविधि प्रथम कर लेवे॥

(इस संस्कार में निम्नमन्त्रों से शक्कर और घृत मिले हुये भात या हलुवे की आहुतें देवे)

१ विशेषाहुतें ८—(१)—विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा॥ (२)—गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ स्वाहा॥ (३)—हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतोऽअश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ (४)—रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना॥ ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा॥ य० १९ (५)—यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा॥ (६)—यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे। एवा ते ध्रियतां गर्भोऽअनु-

सुतं सवितवे स्वाहा॥ ७)—यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतं सवितवे स्वाहा। (८)—यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् एवा ते ध्रियतां गर्भो ऽअनुसूतं सवितवे स्वाहा॥ (९)—यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत्। एवा ते ध्रियतां गर्भो अनुसूतं सवितवे स्वाहा॥

२ ईश्वर ध्यान :—नीचे के मंत्र से ईश्वर का ध्यान करे।

ओं आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परि वृङ्ग्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥ यजु० १३। मंत्र ४१

३ प्रदक्षिणा और नमस्ते—यज्ञ कुण्ड की दोनों प्रदक्षिणा करके उपस्थितों से और आपस में नमस्ते करें।

४ अवभाग स्नान :—जो घृत अवभाग का शेष रहा हो लेकर स्त्री समस्त शरीर में मर्दन करके स्नान कर ईश्वर का ध्यान तथा विश्वान दे० मन्त्र से अभीष्ट सिद्धि की प्रार्थना करे।

५ गर्भस्थापना :—रात्रि के ६ बजे से ३ बजे के मध्य में स्थापना करे। उस समय दोनों की जैसी चेष्टा होगी वैसी ही सन्तान होगी। स्त्री एक वा आध घंटे तक लेटी हुई सावधान रहकर स्नान करे पुनः दुग्ध पान कर पृथक् २ शयन करें। जिस प्रकार नौ दश मास तक ध्यान और आहार विहार से रहे गी उसी प्रकार की सन्तान होगी। सात्विक भोजन करे और मद्य मांसादिक तामसी पदार्थ न खावे। ईर्षा द्वेष काम क्रोधादि से बचे।

गर्भस्थापन की अवस्था २५ और १६ वर्ष की हो जब ३६ वार रजस्वला हो जावे तब गर्भधान करें। इससे विस्फोटकादि रोग रहित शुद्ध सात्विक प्रकृति सन्तान होते हैं। जैसे विना परिपक्क बीज और बलिष्ट क्षेत्र के कोई कृपक बीज नहीं बोता। ऐसा करने से गर्भ व्यर्थ नहीं जाता सन्तान निरोग दीर्घायु बलिष्ठ होते हैं। रजस्वला से सोलह दिनों तक गर्भ स्थापन का समय है।

रजस्वला से ४ रात्रि गेरहवीं और तेरहवीं पूर्णमासी, और अमावस्या की भी रात्रि वर्जित है। ६। ८। १०। १२। १४। १६ वीं रात्रियों की स्थापन से पुत्र और ५। ७। ६। १५ वीं रात्रि से कन्या होती है। उक्त दश में से किसी एक रात्रि में एक वार गर्भाधान करे। पुरुष का वीर्य्य विशेष से पुत्र और स्त्री के वीर्य्य विशेष से कन्या होती है और सम हो तो नपुंसक या वंभरा होती है। अल्प वीर्य्य से और गर्भवती के प्रसङ्ग से गर्भपात हो जाता है।

गर्भ के दूसरे मासान्त में पुंसवन और चौथे मास में सीमन्त करे। जन्म के ११ वें वा १०१ वें दिन में नामकरण ४ मास में निष्क्रमण ६ मास में अन्नप्राशन ३ वर्ष में मुण्डन ५ में कर्णबेध ५ से ८ तक उपनयन वेदारम्भ करे॥ इति॥

२॥ पुंसवनसंस्कारविधिः॥

१ विशेषाहुतें २ मंत्र॥ (१)-ओंआतेगर्भोयोनि-मेतुपुमान्बाणइवेषुधिम्। आवीरोजायतांपुत्रस्ते दशमास्यःस्वाहा॥ (२)-अग्निरेतुप्रथमोदेवतानां सोऽस्यैप्रजांमुञ्चतुमृत्युपाशात्। तदयंराजावरुणो-

ऽनुमन्यतांयथेयंस्त्रीपौत्रमघंनरोदात्स्वाहा ॥

२ गर्भ रक्षार्थ प्रार्थना—प्रार्थना हिरण्यगर्भ मन्त्र से करे ।

॥ इति ॥

३ ॥ सीमन्तोन्नयनसंस्कारविधिः ॥

१ विशेषाहुतें ८—मूंग तिल चावल की खिचड़ी घृतयुक्त की आहुतें ।

[१]—ओंधातादद‌ातुदाशुषेप्राचींजीवातु मुक्षित-म् । वयंदेवस्यधीमहिसुमतिंवाजिनीवतिस्वाहा ॥ इदंधात्रेइदन्नमम ॥ प्रत्येक मन्त्र से दो दो आहुतें देवे ।

[२]—नेजमेषपरापतसुपुत्रःपुनरापत । अस्यैमेपुत्रकामायैगर्भमाधेहियःपुमान्स्वाहा ॥ (३)—यथेयंपृथिवीमह्युत्तानागर्भमादधे । एवंतंगर्भमाधेहि दशमेमासिसूतवेस्वाहा ॥ [४]—विष्णोःश्रेष्ठेन रूपेणास्यांनार्यांगवीन्याम् । पुमांसंपुत्रानाधेहि दशमेमासिसूतवेस्वाहा ॥ २ गर्भ रक्षार्थ प्रार्थना—

[५]—ओंसुमित्रियानआपओषधयःसन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मैसन्तुयोऽस्मान्द्वेष्टियंचवयंद्विष्मः ॥

३, माङ्गलिक वचन बोलना—ओंवीरसूस्त्वंभव जीवसूस्त्वंभव, जीवपत्नीत्वंभव ॥

॥ इति ॥

४ ॥ जातकर्मसंस्कारविधिः ॥

जिस दिन सन्तान का जन्म होना सम्भव हो प्रथम साधारण हवन द्वारा घर के वायु को शुद्ध कर लेवे।

१ नाड़ीछेदन—नाड़ी पेट की ओर को चार बार सूते, झटका न लगने पावे। छह अंगुल लम्बी नाड़ी रक्खे दो जगह से बांधकर ऊपर से तेज छुरे द्वारा काटे। ऐसा पुष्ट बांधे कि काटने पर एक बिन्दु भी रक्त न निकले पश्चात् समस्त मलाशय शीघ्र बाहर करा शुद्ध मिट्टी आदि से स्नान लेपन करावे और बालक को धो पोंछ स्वच्छ वस्त्र पहना देवे। तब सामान्य विधि होमादि क्रिया को पूर्ण करके घृत से दुगना सहद मिलाकर सोने की शलाका से बालक की जीभ पर ओ३म् यह अक्षर लिख के उसके दक्षिण कान में "वेदोऽसीति" तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना और इन मन्त्रों से दो दो रत्ती सन्तान को मुख में चटावे।

[१] ओंभूस्त्वयिदधामि [२] ओंभुवस्त्वयिदधामि [३] ओंस्वस्त्वयिदधामि ॥

३ वेदमंत्र श्रवण कराना—अब बालक के कन्धे को स्पर्श करके। [१] ओंमेधान्तेदेवःसवितामेधांदेवीसरस्वती। मेधान्तेअश्विनौदेवावाधत्तांपुष्करस्रजौ ॥ [२]—ओंअग्निरायुष्मान्‌सवनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषायुष्मन्तंकरोमि ॥ [३]—ओंसोमऽआयुष्मान्‌स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन०॥ [४]—ओंब्रह्मऽआयुष्मत्‌तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन०॥ [५] ओंदेवा-[६] —ओं ऋषयआयुष्मन्तस्तेव्रतैरायुष्माँन्तस्तेन०॥ आयुष्मान्तस्तेऽमृतेनायुष्माँन्तास्तेन०॥ [७]—ओं

पितरआयुष्मन्तः तेस्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन ॥ (८)
ओंयज्ञआयुष्मान्‌सदक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन० ॥ (९)
ओंसमुद्रआयुष्मान्‌सस्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वायु-
षाऽऽयुष्मन्तंकरोमि ॥ पा० कां० १ । कं० १६ (१०)-
ओंइन्द्रश्रेष्ठानिद्रविणानिधेहिचित्तिंदक्षस्यसुभगत्व-
मस्मे । पोषंरयीणामरिष्टिंतनूनांस्वाद्मानंवाचःसु-
दिनत्वमह्नाम् ॥ ऋ० २ । सू० २१ (११)—अस्मे
प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्ररायो विश्ववारस्यभूरेः ।
अस्मेशतंशरदोजीवसेधाअस्मेविराञ्छवनइन्द्र—
शिप्रिन् ॥ ऋ० ३ सू ३६ (१२)—ओंअश्माभवपर-
शुर्भवहिरण्यमस्तृतंभव । वेदोवैपुत्रनामासिसजीव
शरदःशतम् ॥ (१३)—त्र्यायुषंजमदग्नेःकश्यपस्यत्र्या-
युषम् । यद्देवेषुत्र्यायुषंतन्नोअस्तुत्र्यायुषम् ॥ (१४)—
ओंवेदतेभूमिहृदयंदिविचन्द्रमसिश्रितम् । वेदाहं
तन्मांतद्विद्यात्पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदः शतꣳ
शृणुयामशरदःशतम् ॥ ४ शिर का आघ्राण—नीचे
के मन्त्रों को बोलके सन्तान का शिर सूंघे । (१)-अङ्गादङ्गा-
त्संभवसिहृदयादधिजायसे । वेदोवैपुत्रनामासिस-
जीवशरदःशतम् ॥ २)-अश्माभवपरशुर्भवहिरण्यम-
स्तृतंभव । आत्मासिपुत्रमामृथाःसजीवशरदःशतम्॥

(३)—पशूनांत्वाहिंकारेणाभिजिघ्राम्यहम् ॥ ४ दुग्धपान कराना—इस मन्त्र को बोल माता को दूध पिलाने देवे ॥ (१)—ओं।आपोदेवेषुजागृथयथादेवेषुजागृथ। एवमस्याᳪसूतिकायाᳪसपुत्रिकायां जागृथ ॥

॥ इति ॥

५ ॥ नामकरणसंस्कारविधिः ॥

१ विशेषाहुतें ५—(१)—ओंप्रजापतयेस्वाहा (२)-ओंप्रतिपदेस्वाहा (३)—ओंब्रह्मणेस्वाहा (४)--ओं अश्विभ्यांस्वाहा । (५)—ओंअश्विभ्यांस्वाहा ॥

सन्तान को यज्ञशाला में ले आसके तो ले आकर कोई शुभ नाम रख लेवे ।

जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने वालों ने नामों की भी रजिस्टरी अपने २ नाम करना चाहा था वह अन्धेर नहीं चली। जिनके जो मन भाया नाम धरता रहा वे देख नाम किसी की जागीर नहीं अतेव शुभ नाम धरे ॥

२ नाम धरना—देवव्रत, सत्यव्रत, जयदेव, ब्रह्मदेव, भूमित्र आदि ॥

सुभद्रा, गायत्री, सुमित्रा, सुखदा, सरस्वती आदि नाम रखे और नाम लेकर बोले ॥

स्वमायुष्मानवर्च्चस्वीतेजस्वीश्रीमान्भूयाः ॥ इति ॥

६ ॥ निष्क्रमणसंस्कारविधिः

जब सामान्य विधि होमादि समाप्त कर चुके तब बालक

को घर से बाहर जहां का वायु शुद्ध हो भ्रमण कराने को यह मन्त्र बोलके निकाले ॥

१—ओंतच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदः शतꣳ शृणुयामशरदः शतंप्रब्रवामशरदःशतमदीनाःस्यामशरदः शतंभूयश्चशरदःशतात् ॥ य० ३६ । मंत्र २४ ॥ २—त्वं जीवशरदःशतंवर्धमानः ॥ इति ॥

७ ॥ अन्नप्राशनसंस्कारविधिः ॥

१ विशेषाहुतें ४—घृत खांड़ युक्त भात की आहुतें ॥

(१)—ओंप्राणेनान्नमशीयस्वाहा । इदंप्राणायइदन्नमम (२—ओं अपानेनगन्धानमशीयस्वाहा । इदमपानायइदन्नमम ॥ (३)—ओंचक्षुषारूपाण्यशीयस्वाहा । इदंचक्षुषेइदन्नमम (४—ओंश्रोत्रेणयशोऽशीयस्वाहा । इदंश्रोत्रायइदन्नमम २—अन्नप्राशन—(१—ओंअन्नपतेऽन्नस्यनोदेह्यनमीवस्यशुष्मिणः । प्रप्रदातारंतारिषऊर्ज्जंनोधेहिद्विपदेचतुष्पदे ॥

३—बालककोआशीर्वादबोले—त्वमन्नपतिरन्नादोवर्धमानोभूयाः ॥ ॥इति॥

८ ॥ चूड़ाकर्मसंस्कारविधिः ॥

१ शिरमुड़ना—प्रसन्नतार्थ मन्त्र बोलता हुआ शिर मुड़वावे ॥

[१] ओं आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेनवाय उदकेनेहि। आदित्या रुद्रावसव उन्दन्तुसचेतसः सोमस्यराज्ञो वपतप्रचेतसः॥ [२] ओंअदितिः श्मश्रुवपत्वापउन्दन्तुवर्चसा। चिकित्सतुप्रजापतिर्दीर्घायुत्वायचक्षसे॥ [३] ओंयेनावपत्सवितासुरेणसोमस्यराज्ञोवरुणस्यविद्वान्। तेनब्रह्माणोवपतेदमस्यगोमानश्ववानयमस्तुप्रजावान्॥ इति॥

९ ॥ कर्णवेधसंस्कारविधिः ॥

सामान्यविधि होमादि कर कुछ खिलाता और मन्त्र पढ़ता हुआ वेध करावे ॥

१ ओंभद्रंकर्णेभिः शृणुयामदेवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितंयदायुः॥ ऋ० मं० १। सू० ८०॥ २—वक्ष्यन्तीवेदागनीगन्ति कर्णंप्रियꣳसखायं परिषस्वजानाः॥ योषेवशिङ्क्ते वितताधिधन्वञ्ज्याऽइयꣳसमनेपारयन्ती॥ ऋ० मं० ६। सू ७५॥ इति॥

१० ॥ उपनयनसंस्कारविधिः ॥

१ यज्ञोपवीतधारण—दोनोंमन्त्रों से पिता वा आचार्य्य १ यज्ञोपवीत धारण करावे॥

(१) ओंयज्ञोपवीतंपरमंपवित्रंप्रजापतेर्यत्सहजंपुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यंप्रतिमुञ्च शुभ्रंयज्ञोपवीतंबलमस्तुतेजः॥ (२)यज्ञोपवीतमसियज्ञस्यत्वायज्ञोपवीतेनोपनह्यामि*२ सन्तानकेहाथसे ५ आहुतें घृतकी॥ (१) ओंअग्नेव्रतपतेव्रतंचरिष्यामितत्तेप्रब्रवीमितच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमिस्वाहा। इदमग्नयेइदन्नमम ॥ (२)—ओंवायोव्रतपते०स्वाहा इदंवायवेइदन्नमम ॥ (३) ओंसूर्यव्रतपते०स्वाहा। इदंसूर्यायइदन्नमम ॥ (४)—ओंचन्द्रव्रतपते०स्वाहा। इदंचन्द्रायइदन्नमम ॥ (५)—ओंव्रतानांव्रतपते०स्वाहा।इदमिन्द्रायव्रतपतेइदन्नमम॥ मं० ब्रा १।६।८॥१३॥ सामान्य प्रकरण में दिये मन्त्रों से ६ आहुतें देवे व्याहृति ४ स्विष्टकृत १ प्रजापत्य।

३—सन्तानको शिक्षा—सन्मुख बैठा कन्धे पर हाथ धर के बोले॥

(१) ओंकस्यब्रह्मचार्यसिकस्त्वाकमुपनयते कायत्वा

---

* अर्थ—हे ईश्वर आप साक्षी हैं कि परम पवित्रता, तेज बल, दीर्घ, और उत्तमायु का देने और सर्वोपकारी यज्ञों को धारण करानेवाला ज्ञान प्राप्त करने पर दृष्टि रखने को अधिष्ठाता पिता का धारण कराया हुआ यज्ञोपवीत मैं सहर्ष स्वीकार करता हूं (ऋणमुक्त होने तक धारण किये रहूंगा।)

परिददामि ॥ (२) ओं प्रजापतये त्वा परिददामि । देवाय त्वा सवित्रे परिददामि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्यः परिददामि । द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि । सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट्यै ॥ पार० कां० २ । कं० २ ॥

मैं तुझे जो शिक्षा देता हूं उसे तू ध्यान से सुन और स्मर्ण रख । मनुष्य जन्म से ही मोक्ष हो सकतो है । परन्तु देह धारण से तीन रिणों का ऋणी मनुष्य है उसके उद्धार विना मुक्ति प्रात नहीं होती अनेव ऋषि, पित्र, और देव ऋणों के स्मर्णार्थ यह तीन तार का ऋण भार चिन्ह यज्ञोपवीत अभी तुझको ग्रहण कराया गया है उसको धारण रखना । जब तुम तीनों आश्रमों के कर्त्तव्यों का ठीक २ पालन करके अनृणी हो जावे और संन्यास लेवेगा तब यज्ञोपवीत उतर जावेगा । मल मूत्र त्यागते समय कान पर चढ़ा लिया करना जिसमें मल मूत्रादि से अशुद्ध न हो । बदलते समय मन्त्रों से धारण कर पुराने को नीचे पैरों की ओर से अलग कर दिया करना । और यह जो तुम्हारी शिखा है यह भी तुम्हारे शरीर में जुड़ा हुआ दूसरा ऋण भार का चिन्ह है यह भी तभी शिर से उतरेगा ॥ अब प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्य्य तथा वेदारम्भ की विधि और उपदेश होगा ॥ 'द्रष्टव्य':—

पितैवोपनयेत्पुत्रं तदभावे पितुर्पिताः । तदभावे पितुर्भ्राता तदभातुसोदरः ॥

अर्थ—पिता ही पुत्र का उपनयनादि करे उसकी अनुपस्थिति में पितामह और ज्येष्ठ भ्राता भी करे ॥ छान्दोग्य परिशिष्ट ॥ इति ॥

११ ॥ वेदारम्भ (ब्रह्मचर्य्याश्रम) विधिः ॥

(उपनयन के दिवसही वेदारम्भ में सामन्यहवनादिविधि नहीं होगी)

१ अवभागस्पर्श ॥ जो आहुतियों का अवभाग घृत जल में छोड़ा गया हो बालक उसे हाथों में लगा २ करके दोनों हाथों से, मुख पर ७ बार लगावे और पिता वा आचार्य्य इन एक २ मन्त्रों को बोलता जावे ॥

[१]-ओंतनूपाअग्नेसितन्वंमेपाहि ॥ (२)-ओंआयुर्दा अग्नेस्यायुर्मेदेहि ॥ (३)-ओंवर्चोदाअग्नेऽसि वर्चोमेदेहि ॥ (४)-ओंअग्नेयन्मे तन्वाऽऊनं तन्म आपृण ॥ (५) ओं मेधां मे सविता आददातु ॥ (६) ओंमेधांमेदेवीसरस्वतीआददातु ॥ (७)-ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तांपुष्करस्रजौ ॥ २ यज्ञकुन्डकीप्रदक्षिणा ॥ कुण्ड की एक परिक्रमा करके पिता वा आचार्य्य के सन्मुख घुटनों के बल गायत्री उपदेश लेने को वैठे ॥

३ गुरुमन्त्रोपदेशः ॥ पिता वा आचार्य्य गायत्री के एकएक वाक्य को बुलवावे ॥

ओंभूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम् । भर्गोदेवस्य धीमहि । धियोयोनःप्रचोदयात् ॥

अर्थ—परमेश्वर के मुख्य नामओं के साथ समस्त नाम आजाते हैं। वह सब जगत् का रचनेवाला और अपने आज्ञा पालकों भक्तों के लिए मनोवाञ्छित फलों का देनेहारा हमारी

बुद्धि को सदा असत्य मार्ग से हटा के सत्यमार्ग में लगावे तथा शुद्ध बुद्धि की ही वृद्धि करे ॥

४ ब्रह्मचर्य्यभेष ॥ मन्त्र बोलकर लँगोटी, अंगोछा, कटिवस्त्र दण्ड दे देवे ॥

(१)-ओंयुवासुवासाःपरिवीतआगात् । सउश्रेयान् भवतिजायमानः । तंधीरासःकवयउन्नयन्तिस्वाध्यो मनसादेवयन्तः ॥ ५ दोनोंकीप्रतिज्ञायें दो मन्त्र बोल पिता पुत्र दोनों प्रतिज्ञा करें ।

(१) ओंममव्रते हृदयंतेदधामि । ममचित्तमनुचित्तंतेअस्तु । ममवाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम् ॥ (२)-बालकसेबुलवावेऔरबालकबोले ॥ मैं चौबीस और अड़तालीस वर्ष के मध्य अमुक समय पर्य्यन्त आप की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य्य को पालन करता हुआ विद्याध्ययनादि करता रहूँगा और इसके विपरीत कुछ भी न करूंगा ॥

(३) पिता तथा आचार्य्यकीप्रतिज्ञा ॥ वह यह कहे कि मैं यावत् जीवन तुझको सहायता देता रहूँगा जिससे तेरे ब्रह्मचर्य्य और विद्या समाप्ति तक पढ़ाने और पढ़वाने में तत्पर रहूंगा ॥

६ ब्रह्मचर्य्यादिकीशिक्षा ॥ (पिताकरे) तू ब्रह्मचारी है । तेरे ब्रह्मचर्य्य के यथावत् पालनार्थ जो २ शिक्षा दी गयी और दी जाती है स्मरण रखना । नित्य प्रातःकाल रात्रि के चौथे प्रहर में (चार बजे) उठ शौच दन्तधावनादि स्नान करके सन्ध्योपासन ईश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना योगाभ्यास का आचरण अग्निहोमादि किया करना । इसीप्रकार सायंकाल में भी । सायं

प्रातः बड़ों से नमस्ते । सभा में बैठने योग्य, गुण ग्रहण किया करना लघुशङ्का समय में भी जल ले जाया करना और बिना ऐसे निमित्त के उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श कभी नहीं करना क्योंकि इससे तेरे ब्रह्मचर्य्य व्रत, विद्या, बल, बुद्धि, तेज, प्रताप, आयु और मानादि सर्वस्व सुखों की बड़ी हानि होगी । सदा संरक्षक और अध्यापक के आधीन रहना परन्तु वह किसी अयोग्य तथा अधर्म कार्य्य के लिये कहें उसे कदापि नहीं मानना और नहीं करना । सदा सत्य, धर्म, न्यायरूपी बर्त्ताव तथा कार्य्य करना और असत्य, अन्याय रूप अधर्म का आचरण कभी मत करना । सदा सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य ही कार्य्य करना । क्रोध, लोभ, मोह, शोक और भय कभी नहीं करना । सदा आनन्द और प्रसन्न मन रहना । पलँग पर नहीं सोना । अपने से बड़ों के सन्मुख उच्चासन पर नहीं बैठना । दिन में कभी भी शयन नहीं करना । नाच गानादि को नहीं देखना । अति भोजन अति जागरण, अति निद्रा, अति स्नान नहीं करना । कोई कशैला पदार्थ, रूखा, तीखा, खट्टा, खारा, लाल मिर्च, तामसी मद्य, मांसादि अभक्ष वस्तु नहीं खाना । बैल, घोड़ा, हाथी ऊँटादि की सवारी नहीं करना । ग्राम में निवास और छत्र का धारण नहीं करना । अङ्ग मर्दन उबटनादि नहीं करना । आठ प्रकार के मैथुनों से सदा अलग रहकर ऊर्ध्वरेता होना और वीर्य्य पात नहीं होने देना । पूर्ण विद्वान् होने के लिए दिन रात यत्न करते रहना और द्वन्द्व अर्थात् सीतोष्ण क्षुधा पिपासा मानापमान का सहन करना । अब तू स्वीकार कर कि ऐसाही किया करूंगा और विपरीत नहीं करूंगा ॥

ब्रह्मचारी का शिक्षा स्वीकार ॥ ब्रह्मचारी खड़ा होकर कहे कि सज्जो आप ने मुझको शिक्षा किया है मैं भक्ति

अर्थात् प्रेम और भय से वैसाही करूँगा और उसके विपरीत कुछ भी नहीं करूँगा ॥

८ होमाहुतें ११ ॥ इन मन्त्रों से मात की तीन और सामान्य प्रकरण संख्या १० की आठ आहुतें घृत की ब्रह्मचारी से दिलवाये ॥

(१) ओंसदसस्पतिमद्भुतंप्रियमिन्द्रस्यकाम्यम् । सनिंमेधामयाशिष ँ स्वाहा। इदंसदसस्पतयेइदन्नमम (२) ओं सत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि धियो योन प्रचोदयात् । इदंसवित्रेइदन्नमम ॥ (३) ओं ऋषिभ्यः स्वाहा । इदंऋषिभ्यःइदन्नमम ॥ ९ भिक्षा दानब्रह्मचारी को॥जो देना चाहें उनसे भिक्षा मांगे। पुरुषों से "भवान्भिक्षांददातु" स्त्रियों से "भवती भिक्षांददातु" १० भोजनब्रह्मचारीको॥(कुछ भोजन करा देवे) ११ यात्राममयकानमस्ते—अपना नाम और गोत्र का नाम लेकर आज्ञा मांगे ब्रह्मचर्य्याश्रम को जाने के लिए और सब से नमस्ते करे ॥ १२ सबउपस्थितजनऐसा शुभबोलें ॥ (१) आयुष्मान्विद्यावान्भवसौम्य ॥ जावो बड़ी आयु और विद्यावाले हो कहकर विदा करे ॥ इति ॥ *

१२ ॥ समावर्त्तनसंस्कारविधिः ॥

जब विद्या और ब्रह्मचर्य्य को समाप्त कर ब्रह्मचारी घर आवे तब सर्वप्रकार से उसका सत्कार करें । पश्चात् सामान्य विधि क्रिया को करके कोई सुगन्धित वस्तु जलमें मिलाकर इन मन्त्र को बोल ब्रह्मचारी को स्नान करावे ॥

१ स्नानविधि ॥ (१) ओं येऽअप्स्वन्तरग्नयःप्रविष्टा गोह्यऽउपगोह्योमयूषो मनोहास्खलोविरुजस्तनूदुषुरिन्द्रियहातान्विजहामियोरोचनस्तमिह गृह्णामि॥पार० कां० २ ।कं० ६ ॥ (२) ओं तेनमामभिषिञ्चामिश्रियैयशसेब्रह्मणेब्रह्मवर्चसाय ॥ (३)-ओं येनश्रियमकृणुतांयेनावमृशतां सुरान् । येनाक्षावभ्यषिञ्चतांयद्वांतदश्विनायशः ॥ २ (भेष) दण्डकोपीनादि त्याग मन्त्र १ ॥

[१]–ओंउदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथावयमादित्यव्रतेतवानागसोऽदितयेस्याम ॥ चोल के त्याग करे ।

३ वस्त्रधारणमंत्रविधि—गृहाश्रम के श्वेत वस्त्रादि धारण करे । [१]- ओंपरिधास्यैयशोधास्यैदीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि । शतंचजीवामिशरदःपुरूचीराय स्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥ पा० कां० २ । कं० २ । क० ६ [२]-ओंयशसामाद्यावापृथिवीयशमेन्द्राबृहस्पती। यशोभगश्चमाविदद्यशोमाप्रतिपद्यताम् ॥

४ अलङ्कारादि धारण विधि मंत्र ६—

(१)—ओंअलङ्करणमसिभूयोऽलङ्करणंभूयात् ॥

(२)—ओं वृत्रस्यासिकनीनकश्चक्षुर्दाअसिचक्षुर्मे देहि (३)—ओंरोचिष्णुरसि ॥ (४)—ओंबृहस्पते छदिरसिपाप्मनोमामन्तर्धेहि तेजसो यशसोमाम-न्तर्धेहि ॥ पार० कां० २ । कं० ६ (५)—ओंप्रति-ष्ठ स्थोविश्वतो मा पातम् ॥ (६)—ओंविश्वाभ्यो माष्ट्राभ्यस्परिपाहिसर्वतः ॥

बोलकर चन्दन, पुष्पमाला, अंजन, अंगूठी आदि धारण कर दर्पण से मुख देखे पुनः दूसरा नया दण्ड और पगमें जूने (पाद-वेष्टन) का जोड़ा धारण करे ॥

५ गो आदि ग्रहण कराना ब्रह्मचारी—

पितादि आसनपर से हाथ पकड़ कर पलंग पर बैठावे और गृहाश्रम में प्रवेशार्थ गो आदि जो जो उचित हो और दे सकें देकर सत्कार करें । और आज्ञा करे कि अब तुम विवाह करके गृहाश्रम में प्रवेश हो । जो निश्चय किया हो विवाह का सम्बन्ध बतलावें । और जो २ उचित हो गृहाश्रम के योग्य व्यापारादि की शिक्षा करें ॥

६ गृहाश्रमादि की स्वीकृति—(व्यापारादि में स्वतंत्र है तथापि) ब्रह्मचारी खड़ा होकर विनय पूर्वक उचिताज्ञा स्वीकार करें ॥

७ कृतज्ञतार्थ भाषण—अध्यापकादि तथा विद्यालय को यथाशक्ति पुरस्कार और धन्यवाद देवे कि जो ब्रह्मचारी को दक्ष किया है ॥ इति ॥

१३ ॥ विवाह (गृहाश्रम) संस्कारविधिः॥

(विवाह किस अवस्था में होना चाहिए इसमें आयुर्वेद का प्रमाण)

१—पंचविंशे ततोवर्षे पुमान्नारीतु षोडशे ।
समत्वागत वीर्यौतौ जानीयात्कुशलोभिषक् ॥
२—ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ॥
यद्याधत्ते पुमानगर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥
३—जातोवान चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥
तस्मादत्यंन्त बालायां गर्भाधानं नकारयेत् ॥

सुश्रुते शरीरस्थाने ॥ अर्थ—पच्चीस वर्ष का पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री होकर (गर्भाधान) करते हैं तभी कुशलता होती है । और इससे न्यूनावस्था में करने से गर्भपात होजाता है यदि रह गया तो जन्म लेकर चिरञ्जीवी नहीं होता किन्तु दुर्बलेन्द्रिय और अल्पायु होता है ॥

४—सर्वकालमेकेविवाहम्—यह आश्वलायन ग्रह्य-सूत्र का प्रमाण है ॥ अर्थ—विवाह सर्व ऋतुओं में हो सकता है : अतएव दोनों पक्ष वाले मिल कर मास दिवस का अवश्य निश्चय कर लेवें । लगनादि का विचार मिथ्या वेद विरुद्ध । पौराणिकों ने स्वार्थ की लीला रची है ॥

(अष्टवर्षाभवेद्गौरीत्यादि) श्लोक शीघ्रबोध में मनुष्य शत्रु काशीनाथ का मिलाया हुआ क्षेपक है वह वेद विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं है । अब तक जो कुछ सुना जाना गया है उससे यह निश्चय हुआ है कि किसी मुसलमान बादशाह ने उस काशीनाथ को कई लक्ष रुपये देकर यह कुरीति प्रचलित करवाई थी । उसके प्रचार के लिए उसी में से ढाई

लाख रुपया पौराणिक ब्राह्मणों को बांटे गये थे और बाल्य-विवाह का प्रचार कर भारत के ऋषि सन्तान के ब्रह्मचर्य, बल, बुद्धि, विद्या, आयु आदि का मूल नाश किया और करवाया गया था।

अब ईश्वर की कृपा से धार्मिक सुसमय (सुराज्य) प्राप्त है इस से अपने प्राचीन धर्म का अवलम्बन करना शीघ्र उचित है। यह अति न्यून समय का ब्रह्मचर्य ऐसे ही गिरे समय के लिए है। पूर्व समय में तो ३६। ४०। ४८ वर्ष पर्यन्त का ब्रह्मचर्य करके विवाह किया जाता था तब आयु भी बड़ी होती थी और शरीर भी बहुत बड़े हुआ करते थे॥

विवाह की रीतियां।

(कुछ रीतियां विदितार्थ होती हैं जिससे किसी को अस्वीकार करनेका अवकाश न हो)

१—वाक् दान कन्या और वर के माता पिता का।

वर और कन्या की योग्यता, प्रसन्नता सम्भव जानकर कुछ रुपया (कुछ मेवा या फल या मिठाई के साथ) वर पक्ष में कन्या पक्ष वाले रख देते हैं इसे वरक्षा वा सगायी कहते हैं।

२ कन्या और वर का वाक्दान—इसी को लगन, फलदान वा कहीं २ तिलक भी कहते हैं। एक प्रार्थना पत्र जिसमें विवाह का स्थान दिन समय नियत करके वर पक्ष में भेजा जाना उचित है उसी के साथ एक पगड़ी, नारियल, चावल, थाल वा परात, यथाशक्ति द्रव्यादि वा १ अंगूठी (छल्ला) चाँदी वा सुवर्ण की भी हो। यदि कन्या वर के घर जाकर विवाह निश्चय हुआ हो तो एक साड़ी (धोती) पीले रङ्ग की भेजे तब पगड़ी नहीं भेजे। प्रार्थनापत्र भेजने की सूचना में इष्ट

मित्र तथा पड़ोसियों को बुलवाकर साधारण होम कर सूचित कर देवें और ऐसा ही बर पक्ष में जब पत्रादि पहुंचे तब वह भी सूचकोत्सव कर लेवें और वह अंगूठी वा (छल्ला) बर को दे देवें। और कन्या पक्ष को पत्र का उत्तर पत्र के साथ वैसाही वह भी एक छल्ला वा अंगूठी कन्या के लिए भेज देवें। यह कार्य्य विवाह से दस पन्द्रह या अधिक दिन प्रथम से कर लेना चाहिये।

कन्या पक्ष से बिवाह का प्रार्थना पत्र।

श्रीमान्.......................................महाशयजी नमस्ते।

सेवा में निवेदन है कि अमुक गोत्रोत्पन्न श्रीमान् अमुकात्मज अमुक की अमुक नाम्नी कन्या का विवाह अमुक के सुपुत्र अमुक से अमुक तिथि तथा अमुक समय में होना निश्चित हुआ है। इस सम्बन्ध में कन्या और बर दोनों अनुकूलता प्रसन्नता से सहमत हैं। अतएव प्रार्थना की जाती है कि आप नियत समय में बर को साथ लेकर यहाँ पधारें। और शेष विवाह विधि को पूर्ण करवाय देवें ॥ प्रार्थी ॥ तिथि सम्बन् डालकर हस्ताक्षर कर देना चाहिये।

बर पक्ष से बिवाह का उत्तर पत्र।

श्रीमान्.......................................महाशयजी नमस्ते।

आपके कृपा पत्रोत्तर में निवेदन है कि विवाह की सूचना का पत्र पाया साथ राशि [रकम] के। ईश्वर की कृपा और मित्रादिकों की सहायता से मैं अमुक गोत्रोत्पन्न श्रीमान् अमुकात्मज अमुक के अमुक नाम पुत्र को साथ लेकर सेवा में उपस्थित हो आपकी नियमित तिथि समय पर बिवाह बिधि को पूर्ण करवाऊंगा। इस पर कोई त्रुटि नहीं की जावेगी। आप निश्चिन्त रहें।

कृपाभिलाषी । तिथि सम्बत् डालकर हस्ताक्षर कर देना चाहिए ।

३ प्रथम विवाहोत्सव । इसे तेल कहते हैं— यह रीति विवाह से दो दिन प्रथम होती है । वर, कन्या दोनों के घर में । इस दिन अपने २ घर कन्या और वर के तेल उबटनादि लगाया जाता है और हवन, भजन, मंगल, गान होता है । इसका समय सायँकाल है ।

४ द्वितीय विवाहोत्सव । इसे मायन कहते हैं— विवाह से एक दिन प्रथम भी उक्त प्रकार उत्सव सायंकाल में होता है ।

५ विवाह मंडफ [यज्ञशाला] में विवाहविधि ॥

(१) उपस्थिति—मधुपर्क भोजनपानादि तथा पग प्रक्षालनादि से सब निवृत्त हो वरपक्ष वाले वर को और कन्या पक्षवाले कन्या को वस्त्रालंकार से युक्त यज्ञशाला में उपस्थित हों और एक दूसरे के सन्मुख (कुण्ड को बीच में करके) स्थानानुसार शान्त चित्त बैठें ।

(२) सूचना पत्र का पढ़ा जाना ॥

कब माता पिता का वाक्दान हुआ और कब कन्या तथा वर के वाक्दान और विवाह का प्रार्थना पत्र गया कब किसने उत्तर भेजा इत्यादि लिखकर वर पक्ष में से कोई सुनावे ।

(३) सामान्य विधि होम क्रिया को प्रथम करे ॥

दोनों पक्ष वाले वर कन्या सहित अपनी २ ओर ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना अग्न्याधानादि होमविधि पूर्ण करें । पश्चात्

(४) पाणिग्रहण एक मंत्र को बोल के हो ॥

कन्या का हाथ उसके माता पितादि ले निम्न लिखित मंत्र को बोल वर को ग्रहण करावें ।

ओंअमुकगोत्रोत्पन्नामि मामसुकनाम्नी मलङ्कृताकन्यांप्रतिग्रहणातु ॥ अर्थात्अमुकगोत्रोत्पन्न अमुक नाम कन्या को ग्रहण आप कीजिये । (वर) प्रतिग्रहणामि (कहकर) ग्रहण करे और अपने दाहने भाग में बैठा लेवे । तब इन पाणिग्रहण [प्रतिज्ञा] मंत्रों को दोनों बोलें ।

१—ओंगृभ्णामितेसौभगत्वायहस्तंमयापत्याजरदष्टिर्यथासः । भगोअर्यमासवितापुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्यायदेवाः ॥ २—ओंभग तेहस्तमग्रभीत्सवितास्तमग्रभीत् । पत्नीत्वमसिधर्मणाहं ग्रहपतिस्तव । ३—ममेयमस्तुपोष्यामह्यंत्वादाद्बृहस्पतिः। मयापत्याप्रजावतिशंजीवशरदःशतम्॥ ४—त्वष्टावासोव्यदधाच्छुभेकंबृहस्पतेःप्रशिषाकवीनाम् । तेनेमांनारींसविताभगश्चसूर्यामिवपरिधत्तांप्रजया । ५—इन्द्राग्नीद्यावापृथिवीमातरिश्वामित्रावरुणाभगोअश्विनोभा । बृहस्पतिर्मरुतोब्रह्मसोमइमांनारींप्रजयावर्धयन्तु ॥ ६-अहंविष्या-

मयिरूपमस्यावेददित्पश्यन्मनसाकुलायम् । नस्ते- यमद्धिमनसोदमुच्येस्वयंअन्यानोवरुणस्यपाशान् ।

५ जयमाल का पहनना—

यज्ञोपवीत और पुष्पमाला का धारण एक यज्ञोपवीत और पुष्पमाला को वधू अपने दोनों हाथों से, उठ सन्मुख खड़ी होकर इस मंत्र को बोल के वर के गले में धारण करा देवे। इसी मंत्र को वर भी बोले ॥

(१) ओं अमोऽहमस्मिसात्वँ सात्वमस्यमोऽहंसा माहमस्मिऋक्त्वंद्यौरहंपृथिवीत्वंतावेवविवहावहै सहरेतोदधावहै। प्रजांप्रजनयावहैपुत्रान्विन्दावहै बहून् । तेसन्तुजरदष्टय:संप्रियौरोचिष्णूसुमनस्य- मानौ । पश्येमशरद:शतंजीवेमशरद:शतँ शृणु यामशरद:शतम् ॥ जयमाल डाल दाहिने बैठ जावे ॥ (अत्रबधू यज्ञोपवीत नहीं पहिनेगी, यह ऋण भार अपने पतिको सौंप चुकी है। पुरुष आज से दो यज्ञोपवीत धारण किए रहेगा)

६ बर के प्रतिज्ञा वाक्य— हे बरानने मनुष्य देह के चार फल। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए चारो आश्रमों के कर्त्तव्यों का ठीक २ पालन करना आवश्यक हैं अतएव तेरे माता पितादि तथा उपस्थित जन अब ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहाश्रम में प्रवेश कर प्रजा वृद्धि करने आदि के अर्थ तुझे मेरे लिए देने हैं मैं भी शुद्ध तथा सत्य भाव से प्रेम पूर्वक स्वीकार करता हूं। आज से तू मेरी स्त्री और मैं तेरा पति हूं। जीवन पर्यन्त तेरे अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से स्त्रित्व भाव तथा

व्यवहार न करूंगा तेरे विपरीत कोई भी अप्रियाचरण तथा कार्य और मिथ्या व्यवहार न करूंगा। और जीवन पर्यन्त तेरा त्याग न करूंगा। धर्मादि शुभ कामों के करने कराने और अधर्मादि के त्याग करने कराने में तथा सुख की प्राप्ति और दुःख के त्याग सम्बन्धी कर्मों में जिस प्रकार मेरा तुझ पर अधिकार रहेगा उसी प्रकार तेरा मुझपर अधिकार रहेगा कि तू मुझे सर्वथा अन्याय अधर्म और अप्रियाचरणोंसे रोकती रहे।

मैं तुझको सब प्रकार यथाशक्ति पालन पोषणादि सुख देने और दुःख दूर करने में किसी प्रकार की आलस्यतादि त्रुटि न करूंगा। इस स्वामी सेवक भावी सम्बन्ध के कारण तेरा मुझ पर प्रार्थना रूप और मेरा तुझ पर आज्ञा रूप से वर्त्तने का अधिकार रहेगा। तुझपर मैं प्रेम और दया से वर्तूंगा और तू प्रेम और भययुक्त मेरी भक्ति करेगी। उक्त सारी प्रतिज्ञाओं का मैं अमुक गोत्रोत्पन्न अमुकनाम जीवन पर्यन्त स्त्री व्रत धर्म का पालन करूंगा। इस पर उपस्थित जन और इस अग्नि स्वरूप सर्व व्यापी परमात्मा साक्षी हैं।

७ वधू के प्रतिज्ञा वाक्य—हे स्वामी मनुष्य शरीर के चारो फलों की प्राप्ति के अर्थ विवाह करना आवश्यक समझ कर मेरे माता पितादि उपस्थित जन मुझको आप के लिए देते हैं और आप भी अपने माता पितादि की सम्मत्यानुसार मुझे शुद्ध, सत्य, भाव से प्रेम पूर्वक स्वीकार करते हैं। और दाम्पत्य धर्म पालन को पूरी २ प्रतिज्ञा करते हैं। मैं भी शुद्ध, सत्य और भक्ति पूर्वक आप को अपना स्वामी स्वीकार करती हूँ। आज से मैं आप की पत्नी और आप मेरे पति हैं। मैं जीवन पर्यन्त आप के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष को प्रेम तथा पुरुष दृष्टि से भी न

देखूंगी । आप की आज्ञा के विपरीत कोई भी कार्य तथा मिथ्या व्यवहार न करूंगी । किन्तु आप की आज्ञानुकूल ही सब कार्य और सत्य व्यवहार करूंगी । कभी आप का त्याग न करूंगी । जिस प्रकार मेरा आप पर अधिकार रहेगा उसी प्रकार आप का भी मेरे पर अधिकार रहेगा कि आप मुझे सर्वथा अन्याय अधर्म और अप्रियाचरणों से रोकें ॥

समस्त कार्यों में आप को सहायता देती रहूँगी । आपही को सेव्य, पूज्य, पालक, स्वामी मानूंगी । आप के माता पिता भगिनी भ्रातादिकों से भी आप के अनुकूल ही प्रेम पूर्वक बर्तूंगी । आप मुझ पर प्रेम और दया रखेंगे और मैं आप की भक्ति करूंगी । आप मुझसे आज्ञा रूप में और मैं आप से प्रार्थना रूप में सदा बर्त्ता करूंगी । उक्त सब प्रतिज्ञाओं का मैं अमुक गोत्रोत्पन्न अमुक नाम जीवन पर्यन्त पतिव्रता धर्म का पालन करूंगी । इस पर उपस्थित सुजन और सर्वव्यापी अग्नि स्वरूप परमात्मा साक्षी हैं । अब बधू वर के वाम भाग में बैठ के दोनों आहुतें देवें ।

८ विवाहकीविशेषहोमाहुतें—— अब वर बधू की गाँठ जोड़ दे ॥

(१)—ओंभूर्भुवःस्वः । त्वमर्यमा भवसियत्कनीनांनामस्वधावन्गुह्यं बिभर्षि । अञ्जन्तिमित्रंसुधितंनगोभिर्यद्दम्पतीसमनसाकृणोषिस्वाहा । इदमग्नयेइदन्नमम ॥ ऋ० मं० ५ । सू० ३ (२)—ओंचित्तंच स्वाहा । इदंचित्तायइदन्नमम ॥ (३)—ओंचित्तिश्चस्वहा । इदंचित्त्यैइदन्नमम ॥ (४)--ओंआकू-

तंचस्वाहा। इदमाकूताय इदन्नमम॥ (५)--ओं आकूतिश्चस्वाहा। इदमाकूत्यैइदन्नमम॥ (६)--ओं विज्ञातञ्च स्वाहा। इदंविज्ञातायइदन्नमम॥ (७)-ओं विज्ञातिश्चस्वाहा। इदंविज्ञात्यैइदन्नमम॥ (८)--ओंमनश्चस्वाहा। इदंमनसेइदन्नमम॥ (९) ओं शक्करीश्चस्वाहा। इदंशक्करीभ्यः इदन्नमम॥ (१०)-ओंदर्शश्च स्वाहा। इदंदर्शायइदन्नमम॥ (११)- ओंपौर्णमासंचस्वाहा। इदंपौर्णमासायइदन्नमम॥ (१२)- ओंबृहच्चस्वाहा। इदंबृहते इदन्नमम॥ (१३)-ओंरथन्तरञ्चस्वाहा। इदंरथन्तरायइदन्नमम॥ (१४)-ओं प्रजापतिर्जयानिन्द्रायवृष्णेप्रायच्छदुग्रःपृतनाजयेषुतस्मै। विशः समनमन्त सर्वाःसउग्रःसइहव्योबभूवस्वाहा॥ इदंप्रजापतयेजयानिन्द्रायइदन्नमम॥ (१५) ओं अग्निर्भूतानामधिपतिःसमावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा। इदमग्नयेभूतानामधिपतयेइदन्नमम॥

(१६)—ओंइन्द्रोज्येष्ठानामधिपतिःसमावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधाया म-

स्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदमिन्द्राय ज्येष्ठानामधिपतये इदन्न मम॥ (१७)—ओं यमः पृथिव्याऽधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदंयमायपृथिव्याअधिपतये इदन्न मम॥ (१८)—ओंवायुरन्तरिक्षस्याधिपतिःसमावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा। इदं वायवेऽन्तरिक्षस्याधिपतये इदन्नमम॥ (१९)—ओं सूर्यौदिवोधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा। इदंसूर्यायदिवोऽधिपतयेइदन्न मम॥ (२०)—ओंचन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदंचन्द्रमसेनक्षत्राणामधिपतयेइदन्नमम॥ (२१)—ओं बृहस्पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदंबृहस्पतये ब्रह्मणोधिप-

तयेइदन्नमम ॥ (२२)—ओंमित्रः सत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा । इदंमित्राय सत्यानामधिपतयेइदन्नमम ॥ (२३)—ओंवरुणोऽपामधिपतिःसमावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा । इदंवरुणायापामधिपतयेइदन्नमम ॥ (२४)—ओंसमुद्र स्रोत्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँस्वाहा ॥ इदं समुद्रायस्रोत्यानामधिपतयेइदन्नमम ॥ (२५)—ओं अन्नँसाम्राज्यानामधिपतिः समावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँस्वाहा । इदमन्नायसाम्राज्यानामधिपतयेइदन्नमम ॥ (२६)—ओंसोमऽओषधीनामधिपतिःसमावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँस्वाहा । इदंसोमायओषधीनामधिपतयेइदन्नमम ॥ (२७)—ओं सविता प्रसवानामधिपतिः स

मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदं सवित्रेप्रसवानामधिपतयेइदन्नमम॥ (२८)—ओं रुद्रःपशूनामधिपतिः समावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा॥ इदंरुद्रायपशूनामधिपतयेइदन्न मम॥ (२९)—ओंत्वष्टारूपाणामधिपतिः स मावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन्क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यांपुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा॥ इदंत्वष्ट्रे रूपाणामधिपतयेइदन्नमम॥ (३०)—ओं विष्णुः पर्वतानामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्याँ स्वाहा। इदंविष्णवे पर्वतानामधिपतये इदन्नमम॥ (३१)—ओंमरुतोगणानामधिपतयस्ते मावन्त्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां पुरोधायामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्याँ स्वाहा। इदंमरुद्भ्योगणानामधिपतिभ्यःइदन्नमम॥ (३२) ओंपितरःपितामहाःपरेऽवरेततास्ततामहाः इह मावत्वस्मिन्ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेऽस्यामाशिष्यस्यां

पुरोधामस्मिन्कर्मण्यस्यांदेवहूत्या५ँ स्वाहा। इदं पितृभ्यः पितामहेभ्यः परेभ्योऽवरेभ्यस्ततामहेभ्य-श्चइदन्नमम॥

(विशेष होम करना हो तो प्रार्थना के ६७ मन्त्रोंसे और गायत्री से चाहे जितना करे)

६ फेरे (भांवरें) चार॥ (यज्ञ कुन्ड की प्रदक्षिणा)

गांठ जुड़े हुवे बधू आगे और वर पीछे होकर नीचे लिखे मन्त्रों को बोल यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करें। जब तीन फेरे हो चुकें तब चौथे फेरे में वधू पीछे होजावे और वर आगे हो चौथा फेरा घूम कर बैठ जावे॥ क्योंकि तीनही आश्रमों में स्त्री की आवश्यकता है चौथे में नहीं।

(१—तुभ्यमग्नेपर्यवहन्त्सूर्यांवहतुनासह। पुनः पतिभ्योजायांदाग्नेप्रजयासह॥ ऋ०(२)—ओंकन्य-लापितृभ्यःपतिलोकं पतीयमपदीक्षा यमष्ट। कन्या उतत्वया वयधारा उदन्या इवातिगाहे महिद्विषः॥ मं० ब्रा० १।२।५॥ १० धानीकीआहुतिबधूदेवे—

(१)—ओंभगायस्वाहा। इदंभगायइदन्नमम॥

इस आहुति का यह प्रयोजन है कि जब तक भूसी में चावल बँधा है तभी तक अन्न उत्पन्नकी शक्ति रहती है और भूसी से निकली हुई जैसी यह खील है कि इसमें अंकुर शक्ति नहीं रही है। इसीप्रकार स्त्री पुरुष दोनों मिले हुवे रहें।

११—दोनों के मिश्रित प्रतिज्ञा वाक्य॥ वर और

बधू दोनो सप्तपदी और प्रतिज्ञा के मन्त्रों को बोल प्रथम बर प्रतिज्ञा करे पुनः बधू भी ॥

(१)—ओं इषएकपदीभव सा मामनुव्रताभवविष्णुस्त्वानयतुपुत्रान्विन्दावहै बहूँस्तेसन्तुजरदष्टयः [२]—ओंऊर्जेद्विपदीभव० [३]—ओं रायस्पोषाय त्रिपदीभव० [४]ओंमयोभवाय चतुष्पदीभव० [५]—ओंप्रजाभ्यःपञ्चपदीभव० [६] ओंऋतुभ्यःषट्पदीभव० [७]-ओंसखेसप्तपदीभव० [८]—ओंममव्रते तेहृदयंदधामिममचित्तमनुचित्तं तेअस्तु। ममवाचमेकमनाजुषस्वप्रजापतिष्ट्वानियुनक्तुमह्यम्

हे उपस्थित सुजनों आप लोग हमारे साक्षी हैं। हम आप के निश्चय के लिए कहते हैं कि हम दोनों अपनी प्रसन्नता और सत्य, शुद्ध प्रेम से एक दूसरे को प्राणवत् ग्रहण कर विवाह किया है। हम जीवन पर्यन्त एक दूसरे के (प्रसन्न भाव शान्ति तथा स्थिरता से) आधीन रहेंगे। हम एक दूसरे के हाथ बिक चुके हैं अब कोई किसी का त्याग नहीं कर सकेगा। हम दोनों जल समान शान्त और प्राण वायु के समान प्रेम भाव से एक दूसरे को धारण किये रहेंगे। सत्यतारूपी गांठ में बंधे हुवे सूर्य्य और पृथिवी रूप ध्रुव के समान स्थिर रहेंगे। और गृहस्थाश्रम के शुद्ध सत्य व्यवहारों को पालन करते हुवे शुद्ध तथा सत्याचरणों से सुसन्तानोत्पत्ति करेंगे। कोई किसी के विपरीत अप्रियाचर्ण तथा विरोध न करेंगे किन्तु दोनों स्वामि सेवक भाव से बरतेंगे॥ इति विधि समाप्तम्॥

१२ विसर्जन । ईश्वर प्रार्थना—विश्वानि देव मंत्र से दोनों प्रार्थना कर विधि समाप्त करें ॥

१३ नमस्ते—गांठ खोल कर बर बधू दोनों सबसे नमस्ते करें ॥

१४ वस्त्राभूषण—जो बर पक्ष से आए हों वस्त्रा-भूषणादि बधू को देकर दोनों पक्ष वाले यज्ञशाला से प्रथक् हों। पश्चात् वह ब्रह्मचर्य्याश्रम की पीली धोती और यज्ञोपवीत ऊपर से बधू उतार कर गृहस्थाश्रम के वस्त्राभूषणों को धारण करे ॥

१५ बिदा बिदाई—जब उचित समझें सत्कार पूर्वक एक दूसरे को धन्यबाद करते हुवे बिदा हों ।

१६ गृहाश्रमोपदेश:—(१)—जब बधू घर आये तब चाहे उसमें सुन्दरतादि की त्रुटि भी हो तोभी कोई उदासीन शब्द न बोलें । और प्रेम करें ।

(१) **नगर यज्ञ**—बर बधू को गांठ जोड़ नागरिक यज्ञशाला में मंगल गान करते हुवे ले जावें और थोड़ा होम करवा लौट आवें । मनु भगवान् ने कहा है:—

(२)—**सन्तुष्टोभार्य्याभर्त्ता भर्त्राभार्य्यातथैवच ।**
यस्मिन्नेवकुलेनित्यंकल्याणंतत्रवैध्रुवम् ॥१॥
यदिहि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदते ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥२

(६) अर्थ—जब स्त्री से प्रसन्न पुरुष और पुरुष से प्रसन्न स्त्री रहती है तब सर्व प्रकार कल्याण होता है और विरोध में दुःख ही होता है । और अप्रसन्नता के कारण सन्तान भी नहीं

होते यदि होते हैं तो दुष्ट होते हैं। स्त्री और पुरुष के तथा गृहाश्रम के व्यवहारों का विशेष वर्णन मनुस्मृति में हैं वहां से जानना चाहिए॥ [उसमें क्षेपक भी है उससे बचे] प्रातःकाल चार बजे उठ शौचादि से निवृत्त हो सन्ध्या अग्निहोत्रादि नित्य करना स्त्री पुरुष दोनों को उचित है। सन्ध्यादि कर्म का विधान नित्य कर्मविधि पुस्तक मंगाकर देखना चाहिए॥

४ **शालादिकर्म**—जब नवीन घर में प्रवेश करना हो तब सामान्यविधि से होम करे। उसी प्रकार जब कोई पाठशाला, कार्य्यालय स्थापन करे तब सामान्यविधि से होम करे।

५ **ऋषि उत्पन्न करने की विधिः**—चौबीस वर्ष से ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचर्य्य को क्रमशः छह सात पीढ़ियों में बढ़ावे और प्रति मास सन्तानेच्छा से ही स्त्री प्रसङ्ग करे पुनः प्रति वर्ष इसी प्रकार जिस पीढ़ी में सारे जीवन भर में एक ही बार स्त्री प्रसङ्ग करने की रुचि रहेगी उसी पीढ़ी में हनूमान भीष्मपितामह आदि के समान प्रतापी उत्पन्न होंगे।

६ **पांच प्रकार के यज्ञ**—यज्ञ उसको कहते हैं कि जिससे संसार का सर्वोपकार होवे वह निम्न लिखित पांच प्रकार से होते हैं।

[१] **शिल्पकारी**—जिसके द्वारा महान् सर्वोपकारी (कृषि, वस्त्र, पात्र, गृहादि का निर्माण) कार्य्य होते हैं।

[२] **कृषि**—जिसके द्वारा प्राणियों के जीवनाधार रूप अन्नादि की उत्पत्ति और पालनाहोती है।

[३] व्यापार—जिससे दूरस्थ देशों में महान् सर्वोपकारी पदार्थ सुगमता से प्राप्त होते हैं ।

[४] शिक्षा (विद्या)—जिससे मनुष्य यथावत् ज्ञानवान होता है ।

[५] हवन—जिससे रोगों की निवृत्ति और आरोग्यता की प्राप्ति होती है इन पांचों में पूर्व २ श्रेष्ठ हैं ।

(६) पूर्वकाल में शिल्पज्ञों और कृषकों का सर्वोपरि मान था उसी प्रकार जब तक न होगा तब तक उन्नति का होना असम्भव है । वेद वेदाङ्गों के सैकड़ों प्रमाण हैं जिनसे स्पष्ट सिद्ध है कि चारो आश्रम मनुष्य मात्र करें । तब सन्यास ग्रहण किसी एक वर्ण के ही लिए बतलाना क्षेपक और महा मिथ्या नहीं तो क्या हैं ।

[७] पुनर्विवाह विधिः—गृहाश्रम (सन्तानोत्पत्त्यादि) के जिस प्रयोजन से एक विवाह करना आवश्यक है उसी से दूसरा भी । जो ब्रह्मचर्य न रह सके वह अन्याय अधर्म और दुःख में न पड़कर अनुकूल पुनर्विवाह करे । (विधिः) यज्ञ कुण्ड के निकट एक दूसरे के सन्मुख बैठ दोनों होमादि क्रिया पूर्ण कर पुरुष स्त्री का हाथ ग्रहण करे दोनों प्रतिज्ञा करें ।

[१] पुरुष के प्रतिज्ञा वाक्य—हे भद्रे मेरे समान तेरा भी जोड़ा दैवी दुर्घटना वस नहीं रहा है जिससे गृहाश्रम के व्यवहारों की पूर्ति शेष रह गई है उसके पूर्ण करने के प्रयोजन से सुजनों की सम्मत्यानुसार तूने पुनर्विवाह मेरे साथ

चाहा है। मैं भी अपनी आवश्यकता पूर्ति के हेतु शुद्ध सत्य भाव से तुझको अपनी पूर्व स्त्री के स्थान में ग्रहण करता हूं। आज से तू मेरी स्त्री और मैं तेरा पुरुष हूं। प्रेमादि का सम्बन्ध जैसा स्त्री पुरुष का होना चाहिए पूर्णतया रहेगा। जिन २ प्रतिज्ञाओं से आबद्ध पूर्व स्त्री से था वैसा ही रहूंगा उसमें किसी प्रकार की न्यूनता न करूंगा। इस पर सर्वव्यापी परमात्मा और उपस्थित जन साक्षी हैं।

[२] **स्त्री के प्रतिज्ञा वाक्य**—हे भद्र मेरे समान आपको भी दैवी दुर्घटना वस स्त्री वियोग होगया है और गृहाश्रम की शेष रही आवश्यकताओं की पूर्त्यर्थ पुनर्विवाह की अभिलाषा से मैंने अपने सम्बन्धो और सुपरिचितों की सम्मत्यानुसार शुद्ध सत्य भाव से आपको अपना स्वामी बनाती हूं। आज से आप मेरे पुरुष और मैं आपकी स्त्री हूँ। प्रेमादि का जैसा सम्बन्ध स्त्री पुरुष का होना चाहिए पूर्णतया रहेगा जिन २ प्रतिज्ञाओं से आबद्ध पूर्व पति से थी रहूंगी उसमें किसी प्रकार की न्यूनता न करूंगी। इस पर सर्वव्यापी परमात्मा और उपस्थित जन साक्षी हैं॥ इति॥

---

१४ ॥ वानप्रस्थाश्रमसंस्कारविधिः ॥

१ विशेष होमाहुतें। हलवे या भात की ४० आहुतें देवे॥ ओंकाय स्वाहा। कस्मै स्वाहा। कतस्मै स्वाहा। आधिमाधीताय स्वाहा। मनः प्रजापतये स्वाहा। चित्तंविज्ञातायादित्यै स्वाहा।

अदित्यैमह्यैस्वाहा । अदित्यैसुमृडीकायैस्वाहा । सरस्वत्यैस्वाहा । सरस्वत्यैपावकायैस्वाहा । सरस्वत्यैबृहत्यैस्वाहा । पूष्णेस्वाहा । पूष्णेप्रपथ्याय स्वाहा । पूष्णेनरन्धिषायस्वाहा । त्वष्ट्रेस्वाहा । त्वष्ट्रेतुरीपायस्वाहा । त्वष्ट्रेपुरुरूपायस्वाहा । भुवनस्यपतयेस्वाहा । अधिपतयेस्वाहा । प्रजापतयेस्वाहा । ओंआयुर्यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । प्राणोयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । अपानोयज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा । व्यानोयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । उदानोयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । समानोयज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा । चक्षुर्यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । श्रोत्रंयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । वाग्यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । मनोयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । आत्मा यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । ब्रह्मायज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । ज्योतिर्यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । स्वर्यज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । पृष्ठंयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । यज्ञोयज्ञेनकल्पताᳬ स्वाहा । एकस्मैस्वाहा । द्वाभ्यांस्वाहा । शतायस्वाहा । एकशतायस्वाहा । व्युष्ट्यैस्वाहा । स्वर्गायस्वाहा ॥

२ वनवास की यात्रा—इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिकों पर घर का भार रख वन में जा योगाभ्यास करे और ग्राम का अन्न वस्त्र त्याग दे ।

ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्यगृहीभवेद् गृहीभूत्वा वनी भवेद्वनीभूत्वाप्रव्रजेत् ॥ १ ॥ श० ब्रा० अर्थ :—

मनुष्य (अपनी आयु का समय इस प्रकार से व्यतीत करे कि) ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करके गृहस्थ होवे पुनः वानप्रस्थ और पश्चात् संन्यास ग्रहण करे ।'

गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥
सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनंगच्छेत्सहैववा ॥ २ ॥

मनु० अ० ६ । अर्थ—जब गृहस्थ अपने देह की त्वचा ढीली और श्वेत केश देखे पुत्र के भी पुत्र हो गया हो तब वनाश्रम लेवे । वनवास करके ग्रामों में उत्पन्न हुए पदार्थों को न खावे । अपने घर के पदार्थों को भी त्याग पुत्रों के आधीन कर देवे और स्त्री भी पुत्रों के ही पास रहे । यदि साथ रहे तो दोनों शुद्धात्मा से ब्रह्मचारी होकर रहें ॥ इति ॥

---

१५ ॥ संन्यासाश्रमसंस्कारविधिः ॥

१ विशेषाहुतें—हलवे या भात की आहुतें देवे ।

(१)—अंहोमुचेप्रभरेमनीषामासूत्राम्णे सुमति मावृणानः । इदमिन्द्रप्रतिहव्यंगृभायसत्याःसन्तु यजमानस्यकामाःस्वाहा । (२)—अंहोमुचंवृषभं यज्ञियानांविराजन्तंप्रथममध्वराणाम् । अपां नपातमश्विनाहुवेधियेन्द्रेणमइन्द्रियंदत्तमोजःस्वाहा॥ (३)—यत्रब्रह्मविदोयान्तिदीक्षयातपसासह । अग्निर्मातत्रनयत्वग्निर्मेधांदधातुमे । अग्नयेस्वाहा। इदमग्नयेइदन्नमम ॥ (४)—सूर्योमातत्रनयतुचक्षुस्सूर्योदधातुमे । सूर्यायस्वाहा । इदंसूर्यायइदन्नमम ॥ (५)—चन्द्रोमातत्रनयतुमनश्चन्द्रोदधातुमे । चन्द्रायस्वाहा। इदंचन्द्रायइदन्नमम ॥ (६)—सोमो मातत्रनयतुपयः सोमोदधातुमे । सोमाय स्वाहा । इदंसोमायइदन्नमम । (७)—इन्द्रोमातत्रनयतुबलमिन्द्रोदधातुमे। इन्द्रायस्वाहा । इदमिन्द्रायइदन्नमम ॥ (८)—आपोमातत्रनयन्त्वमृतंमोपतिष्ठतु । अद्भ्यःस्वाहा । इदमद्भ्यःइदन्नमम ॥

२ ऋणभारचिन्हत्याग ॥ शिखा और सूत्र को उतार कर

[ओं मापो वै सर्वा देवताः स्वाहा। ओं भूः स्वाहा] कह कर त्याग नदी आदि जलाशय में स्वाहा कर देवे और कषाय वस्त्र और दण्ड ले भिक्षावृत्ति और सत्यापदेश करें प्राणि मात्र को स्वात्मवत् प्रिय समझें ॥इति॥

---

१६ ॥ अन्त्येष्टि (मृतक) संस्कारविधिः ॥

मृतक को श्मसान में ले जा वेदी खोद उसमें लकड़ियां भर मृतक को स्नान करा वस्त्र पहना केशर, कपूर चन्दन का लेपन कर चिता में ले जावे और ऊपर से कपूर चन्दनादि लकड़ियां अग्न्याधानादि करके घृत की आहुतें देवे। चार तीन दो अथवा एक मनुष्य लम्बेबांस में चमचे को बांध दूर २ खड़े हो एक २ मन्त्रों से दो दो आहुत देवें। जब घृत बचे तो गायत्री से ही आहुतें देवे। शृङ्गार स्त्री उसी दिन त्यागदे जिस दिन मृत्यु हो।

चिता को होमाहुतें ॥ एक २ मन्त्र से दोदो आहुतें देवे ॥

१ ओं प्राणेभ्यः स्वाहा २
२ ओं पृथिव्यै स्वाहा २
३ ओं अग्नये स्वाहा २
४ ओं अन्तरिक्षाय स्वाहा
५ ओं वायवे स्वाहा
६ ओं दिवे स्वाहा
७ ओं सूर्य्याय स्वाहा
८ ओं दिग्भ्यः स्वाहा
९ ओं चन्द्राय स्वाहा
१० ओं नक्षत्रेभ्यः स्वाहा
११ ओं अद्भ्यः स्वाहा
१२ ओं वरुणाय स्वाहा
१३ ओं नाभ्यै स्वाहा
१४ ओं पूताय स्वाहा

१५ ओं वाचे स्वाहा
१६ ओं प्राणायाय स्वाहा
१७ ओं चक्षसे स्वाहा
१८ ओं श्रोत्राय स्वाहा
१९ ओं लोमभ्यः स्वाहा
२० ओं त्वचे स्वाहा
२१ ओं लोहिताय स्वाहा
२२ ओं मेदोभ्यः स्वाहा
२३ ओं माꣳसेभ्यः स्वाहा
२४ ओं स्नावभ्यः स्वाहा
२५ ओं अस्थभ्यः स्वाहा
२६ ओं मज्जभ्यः स्वाहा
२७ ओं रेतसे स्वाहा
२८ ओं आयासाय स्वाहा
२९ ओं प्रायासाय स्वाहा
३० ओं संयासाय स्वाहा
३१ ओं वियासाय स्वाहा
३२ ओं उद्यासाय स्वाहा
३३ ओं शुचे स्वाहा
३४ ओं शोचते स्वाहा
३५ ओं शोचमानाय स्वाहा
३६ ओं शोकाय स्वाहा
३७ ओं तपसे स्वाहा
३८ ओं तप्यमानाय स्वाहा
३९ ओं तप्ताय स्वाहा
४० ओं धर्माय स्वाहा
४१ ओं निष्कृत्यै स्वाहा
४२ ओं प्रायश्चित्यै स्वाहा
४३ ओं भेषजाय स्वाहा
४४ ओं यमाय स्वाहा
४५ ओं अन्तकाय स्वाहा
४६ ओं मृत्यवे स्वाहा
४७ ओं विश्वेभ्यः स्वाहा
४८ ओं देवेभ्यः स्वाहा
४९ ओं पृथिवीभ्याꣳस्वाहा
५० ओं सर्वंवैपूर्णꣳस्वाहा

जब दाह होगया, समझे तब वैसाही जलता छोड़ लौट आकर घर लिपा पोता हो उसमें भी होम करके भोजनादि करैं। तीसरे दिन वहां जाकर भस्म को ले किसी जलाशय में छोड़ देवै या भूमि में गाड़ देवे ॥

भस्मान्तꣳशरीरम् । य० अ० ४० मं० १५ ॥ शरीर का अन्त कर्म भस्म पर्यन्त ही है इसके पीछे मृतक के लिये कुछ भी कर्म करना शेष नहीं। वर्षी तेरहवीं पिण्ड दानादि का करना वेद विरुद्ध स्वार्थियों ने चलाया है। ऐसे मिथ्या कर्म का करना पुण्य नहीं पाप है ॥ इति षोडश संस्कारविधिः ॥

❀ षोडश संस्कारों का विज्ञान ❀

(१) 'गर्भाधान'—"गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरी करणं यस्मिन्येन वा कर्मणा तद्गर्भाधानम्" गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्यका स्थापन—गर्भाशय में स्थिर करना जिसमें वा जिससे होता है उसे गर्भाधान कहते हैं। जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं वैसे उत्तम संस्कृत बलवान् स्त्री पुरुषोंसे सन्तान भी उत्तम होते हैं। वैसे इससे पूर्ण युवावस्था पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यूनसे न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष का पुरुष, ब्रह्मचर्य्य युक्त अवश्य हो और इससे अधिक वयवाले होनेसे अधिक उत्तमता होती है इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है। देशोन्नति और अवनति का बीज इसी समय वपन होता है, कुलके सभ्य वा कीर्तिरूपी सूर्य्यसे चमकने की नींव इसी समय पड़ती है, सांसारिक और पारमार्थिक सुखों का प्रारम्भ यहीं से होता है, चारों आश्रमोंके विधिवत पालन करनेवाले पौधे का मूला-रोपण इसी समय होता है, इसी संस्कार पर संपूर्ण सृष्टि के बनने और बिगड़ने का दायित्व है, फिर इतने बड़े महत्व के पौधे पर ध्यान न देना कैसे शोककी बात है? जैसे चतुर शिल्पी साँचेसे मनमानी मूर्ति आदि गढ़ सकता है ठीक वैसे-ही हम भी रामकृष्ण से पुत्र और सीता, सावित्री, दमयन्ती सी पुत्रियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु जब कि हमारे सारे कार्य विधिपूर्वक हों। सभ्य महोदयो! यदि आप अपनी इच्छा पूर्ण किया चाहते हैं तो सबसे प्रथम इसी संस्कार गर्भाधान पर आप का पत्नी-सहित पूर्णरूपसे ध्यान चाहिए। 'द्रष्टव्य'—स्त्री पुरुष को सदैव ऋतुगामी होना अर्थात् गर्भस्थापन होने

के दिनसे दोनों को ब्रह्मचर्य करना चाहिए। ऐसा न करने से स्त्रीपुरुष दोनों गर्भिणी गमनकारी व्यभिचारी होंगे और सन्तान के पिंडरूपी चुड़ीमें व्यभिचार की वासना पहुंचनेसे सन्तान भी व्यभिचारी उत्पन्न होगा। जिसप्रकार फोनोग्राफ की चूड़ी जड़ होते हुए शब्दोंको पकड़ लेती है उसीप्रकार बालक व बालिका के पिंडरूपी चूड़ी जो चैतन्य चूड़ी है वह उससे भी ग्रहण करनेकी शक्ति विशेष रखता है अवश्य मानसिक भाव माता पिता के जिस प्रकार होंगे तत्क्षण ग्रहण कर लेवेगी। इसलिए पतिपत्नी को पूर्वसेही अपनी जिम्मेवारी जानकर ब्रह्मचर्य का ध्यान रखना अति आवश्यकीय है। संतान उत्पन्न होने पश्चात् भी २ वर्षतक दोनोंका ब्रह्मचर्यका सेवन करना चाहिए।

(२) पुंसवन—पुमान्सूयते यस्मात् इति "पुंसवनम्"= पुमान् अर्थात् वीर्यवान् (बलवान्) सन्तान उत्पन्न हो जावे जिससे उसका नाम पुंसवन है यह संस्कार गर्भस्थिति ज्ञान हुए से दूसरे वा तीसरे मास में होता है। उसी समय पुंसवन संस्कार करना चाहिए। जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्यका लाभ हो। प्रायः इसकी संपूर्णविधि में पतिपत्नी परन्तु विशेषकर पत्नी को आदेश किया गया है कि वह यत्न से गर्भकी रक्षा करे। तीसरे मास तक गर्भकी धारक शक्ति निर्बल होती है, अतएव इस समय तक बड़ी सावधानी रखना योग्य है, एवं इस संस्कार में जिन जिन औषधिओं का सेवन कराना लाभदायक हो उन सबका गर्भिणीको अवश्य सेवन कराना चाहिए।

'द्रव्य'—प्रथम महीने में बिना औषध दूध यथारुचि ठंडा किया हुआ पीये और प्रातः तथा सायं हितकारी भोजन करे। दूसरे महीने में गर्भिणी का मधुर औषधियों से सिद्ध किया

हुआ दूध पिलावे। छुहारा इलायची आदि मधुर औषधि हैं। तीसरे महीनेमें शहद और घी से युक्त दूध पीना चाहिए (शहद से घी आधा हो यह याद रहे कि शहद और घी समभाग होने से जहर हो जाते हैं)। चौथे महीने में दूध में एक तोला ताजा मक्खन मिला कर पीवे। पांचवे महीने में घी और दूध मिला कर पीना चाहिए। छठे और सातवें महीने में मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए तथा—जीवक, किशमिश, सिंघाड़ा, ऋषभक, छुहारा, गिलोय, जीवन्ती, कौंचके बीज, धनिया, शतावर, कमलगट्टे, मुंडी, काकोली, कसेरू, सहदेवी, क्षीर काकोली, खजूर, खानेकी मिश्री, माषपर्णी, ईख, अश्वगंधा (असगंध), मेदा, दर्भ, गोखरू, महामेदा, कुशा, सौंफ' काकड़ासिंगी, सालीचावल, मुलेठी, गेहूं। इनमें से छुहारा, किशमिश, मुलेठी, सौंफ और शतावर प्रत्येक तीन २ माशे आधसेर दूध में औटाकर पांचतोले देशी मिश्री डाल उपयोग में लावें। जिस औषधि की पहचान वा उपयोग अपने वा अपने किसी कुटुम्बी को न हो तो उस औषधिका वा उपयोग करने आदि का बोध किसी वैद्य द्वारा करावे। सातवें महीने में गर्भ के उत्पीड़न होने से वात, पित्त, कफ वक्षस्थल में प्राप्त होकर दाह को उत्पन्न करते हैं इसलिये उस समय खाज प्रतीत होती है और उस खाज के होते ही पेट की त्वचा को फाड़ देने वाली खाज उत्पन्न होती है उस समय स्त्री को बड़के क्वाथमें मधुर गुण की औषधियों से सिद्ध किया हुआ मक्खन मात्र समय २ पर खिलावे। नमक का खाना थोड़ा कम कर देवे। सिरस का छिलका, धाव का फूल, सरसों और मुलेठी के चूर्ण से सिद्ध किया हुआ तेल स्तनों और पेट पर मले। नाखूनसे खाज न करे यदि सह न सके तो उसपर हाथ केवल फेर लिया करे।

आठवें महीने में दूध में सिद्ध की हुई यवागू को घृतयुक्त

कर समय २ पर पिया करे । नवें महीने में मधुर द्रव्यों से सिद्ध किये तेल द्वारा स्त्री को अनुवासन करना चाहिये । अनुवासन एक प्रकार का वस्ती कर्म है । अर्थात् उसके कब्ज को दूर करना होता है । इसके लिए कोई २ अरंडी का तेल उपयोगी बतलाते हैं । इसके प्रति योग्य वैद्य से पूछ लेना चाहिए । और गर्भ मार्ग को चिकना करने के लिये इस तेल का फोहा योनि में रखना चाहिए ।

(३)'सीमन्तोन्नयन'—तीसरे संस्कार को कहते हैं जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सतुष्ट आरोग्य और गर्भस्थिर—उत्कृष्ट होवे और प्रति दिन बढ़ता जावे । इस संस्कार का समय चौथा, छठा, आठवां मास है उक्त संस्कार गर्भगत सन्तान की मानसिक शक्तियों की वृद्धि के हेतु किया जाता है और वह मानसिक उन्नति गर्भगत सन्तान की तभी हो सकती है जब गर्भिणी स्त्री का मन संतुष्ट रहे और उसका आरोग्य बढ़ता आवें, स्त्री के मन को संतुष्ट करना और उसके आरोग्य का बढ़ाना मानो गर्भगत बच्चे की मानसिक शक्तियों की उन्नति करना तथा गर्भ की उन्नति करना है ।

(४) 'जातकर्म'—यह संस्कार की उत्पत्ति के समय होता है । जब सन्तान उत्पन्न हो उसी समय उसको सुवर्ण, मधु और गौ का घृत तीनों मिलाकर चटावे, क्योंकि ये तीनों वस्तुयें बुद्धि, आयु, आरोग्य और बल को बढ़ानेवाली है, तत्पश्चात् नाल छेदन का विधान करे । मधु और घृत मिलाते समय मधु घृत से दुगना होना चाहिये । मधु और घृत को सोने की शलाका से चटाने के स्थान "ओ३म्" अक्षर लिखने का विधान आगे उक्त संस्कार के प्रकरण में आवेगा । और

उसके दक्षिण कान में "वेदोऽसीति" अर्थात् तेरा गुप्त नाम वेद है, यह भी विधान मिलेगा। वैदिक माता पिता अपने प्यारे पुत्री पुत्र को पहले पहल कोई सम्पत्ति, कोई धन और कोई वस्तु देते हैं कि जो बच्चे को दूध देने से भी प्रथम देनी लिखी है, तो वह आत्मिक संपत्ति है। परमात्मा का "ओ३म्" नाम है। तेरा गुप्त नाम वेद है उस नव जात सन्तान के कान में कहने का फल बड़ा भारी होगा जिसके लिये यह क्रिया की गई है उसके कर्णरूपी ईश्वरीय रचित अपूर्वशब्दग्राही यन्त्र (ग्रामोफोन) में ध्वनि द्वारा वेद शब्द अङ्कित हो गया जोकि मरण पर्यंत इस ग्रामोफोन से निकलने का नहीं।

(५) 'नामकरण'—पुत्र वा पुत्री के जन्म समय से १० दिन छोडकर ११ वा १०१ दिन वा दूसरे वर्ष के आरम्भ में यदि पुत्र हो तो दो वा चार अक्षर का घोष संज्ञक और अन्तःस्थवर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो दो अक्षर छोड़ कर जिसमें हो तीसरा चौथा पाँचवाँ ओर य, र, ल, व, ये चार वर्ण अवश्य आवें, ऐसा नाम रखे। जैसे—भद्र, भद्रसेन, देवदत्त इत्यादि यदि पुत्री हो तो एक तीन वा पांच अक्षर का नाम रखे जैसे—यशोदा, सुखदा इत्यादि। इसके उपरान्त यह भी ध्यान में रहे कि नाम बहुत लम्बा चौड़ा न हो, सुनने में प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष, पक्षी, पर्वत, नदी आदि पर न हो और ऐसा भी न रखे जिसके सुनने से भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा (कल्याणकारी) क्षत्री के नाम के पीछे वर्मा (रक्षाकरने वाला) वैश्य के नाम के साथ गुप्ता धन को सुरक्षित रखने वाला यह उपाधियां लगावे। पुराने समय में चारो वर्णों की प्रत्येक व्यक्ति को शर्म्मा, वर्मा गुप्त और दास चार उपाधियों के धारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। ऐसे नामों के रखने का मुख्य तात्पर्य यह था कि प्रत्येक जान लेवे कि हम

ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य हैं, इसलिये हमको सत्कर्मों में प्रवृत्त होना और बुरे कर्मों से घृणा करना चाहिए ।

(६) '**निष्क्रमण**,—'इसका समय जन्म से ४ मास तक है। आगे लिखे संस्कार के पश्चात् वस्ती के बाहर जहाँ शुद्ध वायु धीरे २ चलती हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहनाकर ले जावे और उस दिन से नित्य प्रति सन्ध्या और प्रातःकाल भेजा करे जिससे उसकी शारीरिक उन्नति हो; यदि सन्तान निर्बल या रोगी हो तो विद्वज्जन कोई और समय नियत करलें ।

(७) '**अन्नप्राशन**,—किसी २ ऋषि ने इसका समय छठे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब सन्तान की पाचन शक्ति हो जावे, क्योंकि इसका अभिप्राय यही है कि उस दिवस से सन्तान को अन्न दिया जावे। संस्कार के पश्चात् बालक को भात में दही, घी और शहद मिला कर खिलावे। तत्पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन देवे ।

(८-९) **चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध अर्थात् कनछेदन**,—इनका समय कम से कम ३ रा और ५ वाँ वर्ष है। मुण्डन संस्कार जब भारतवर्ष में ठीक रीति से किया जाता था तब बच्चों को शिर और नेत्र आदि के रोग बहुत कम होते थे । मुण्डनसंस्कार में दो बातें मुख्य हैं एक तो क्षौर कर्म करना दूसरे मलाई आदि से शिर धोना। इससे शिर और नेत्रों को बहुत लाभ पहुँचता है । 'कर्णवेध' समय माता की गोद में बालक वा बालिका को बिठाकर खिलौने मिठाई आदि से बहला

कर प्रेम करके कोई चतुर मनुष्य अपने बायें हाथ से कान के अन्त में जो सीवन (जोड़) हैं खींच कर देखे, जहाँ सूर्य की किरण चमके वहाँ देवकृत छिद्र में धीरे धीरे सीधा बींधे। पुत्र का पहिले दहिना और कन्या का बाँया बींधे और रूई का डोरा डालकर ठीक बींधे हुए पर ठण्डा तेल चुपड़ देवे। कानों को बींधने से अंत्रवृद्धि (आंत का उतरना) वा अंडवृद्धि को होना यथा संभव रुकता है। ऐसा सुश्रुत का मत है।

(१०) "उपनयन"—(जनेऊ)—इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण पदाधिकारी के लिए गर्भ से वा जन्म से ५,८ वर्ष, क्षत्रिय पदाधिकारी के लिये ६, ११ वर्ष, वैश्य पदाधिकारी के लिये ८, १२ वर्ष, मनु भगवान् का कथन है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण के १६, क्षत्रिय के २२, वैश्य के २४ वर्ष से पूर्व पूर्व यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिए। तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। पुराने समय में गुरुकुल, विद्यालय आदि में जाने का चिन्ह उपनयन हो जाना समझा जाता था।

(११) 'वेदारम्भ'—गायत्री मंत्र से लेकर साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिए नियम धारण करने का नाम वेदारम्भ संस्कार कहाता है। यह संस्कार उपनयन के दूसरे दिन वा एक वर्ष के भीतर किसी दिन होता है। उस दिन से ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी गुरुकुल में जाकर विद्याध्ययन करते हैं कि जिससे मनुष्य के आत्मिक संस्कारों की उन्नति होना संभव है। क्योंकि बिना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सकता। पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक

बल दिया जाता था, क्योंकि बिना इस संस्कार के कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती।

(१२) 'समावर्तन'—जब ब्रह्मचारी एक, दो, तीन, या चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान् होकर विद्यालय को छोड़ कर विवाह विधान पूर्वक गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिए आता है उसी का नाम समावर्तन संस्कार है।

(१३)'विवाह' (गृहाश्रम)—जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत, विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य परस्पर प्रीति युक्त होके और वर्णाश्रम के अनुकुल उत्तम कर्म करने के लिये स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध है उसे "विवाह" कहते हैं। विवाह पूर्णावस्था में करना वेद भगवान् की आज्ञा है—"ब्रह्मचर्य्येणकन्यायुवानंविन्दतेपतिम् "अथर्व० ॥ अर्थात् ब्रह्मचर्य्य करके कन्या युवा पति को प्राप्त हो। न्यूनावस्था में विवाह करने से धन, बल, विद्या और धर्म चारों की हानियां हुई और होंगा।

(१४)'वानप्रस्थ' जब गृहस्थी में मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुके और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुके और पुत्र के भी पुत्र होजावे तब सम्पूर्ण धन, दौलत पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के अधीन करके बन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहें। इसको वानप्रस्थ संस्कार कहते हैं। अर्थात् सब इष्ट मित्रों से मिल पुत्रादिका पर सब घर का भार धर के अग्निहोत्र की सामग्री सहित जंगल में जाकर एकान्त में निवास कर योगाभ्यास, शास्त्रों का विचार महात्माओं का संग करके स्वात्मा और परमात्मा

को साक्षात् करने में प्रयत्न किया करें। वानप्रस्थ करने का समय ५० वर्ष के उपरान्त है।

(१५) 'संन्यास'—मोहादि आवरण पक्षपात छोड़कर विरक्त होकर सब पृथिवी में परोपकारार्थ विचरें उसे संन्यास संस्कार कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है। एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन करके ले लेते हैं। यह सब से श्रेष्ठ है। दूसरा वह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे। तीसरा वह जो ब्रह्मचर्याश्रम से ही बिना गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के ले लेते हैं। परन्तु यह अत्यन्त कठिन है यदि किसी प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में ही छूट गया हो तो अत्यन्त उत्तम है। जिसने पुत्रैषणा त्याग दी, जिसने वित्तैषणा त्याग दी, जिसने लोकैषणा त्याग दी, वही द्विज संन्यासी होता है। मनु ने लिखा है कि ७० वर्ष की अवस्था में संन्यास लेवे।

(१६) 'अंत्येष्टि'—इसे मृतक संस्कार भी कहते हैं कि जो शरीर के अन्त का संस्कार है जिसके आगे उस शरीर के लिये अन्य संस्कार नहीं है। जब कोई मर जावे तब यदि स्त्री हो तो स्त्री और पुरुष हो तो पुरुष स्नान करा कर, चन्दनादि लेपन करके नवीन वस्त्र धारण करावे नदी के समीप अथवा नगर के बाहर ले जाकर वेदी पर नरमेध यज्ञ की रीति अनुसार घृत, और सुगन्धित पदार्थों से वेद मंत्रों द्वारा मृतक का दाह कर्म करें फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में जाकर मृतक के घर पहुँचें, जो लीप पोत कर पहिले से स्वच्छ हो गया हो। वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मंत्रों के द्वारा गृह में सुगन्धित द्रव्यों

सहित हवन करे। इसके उपरान्त तीसरे दिन मृतक का कोई सम्बन्धी अस्थि उठा कर एक स्थान पर रखदेवे।

उपसंहार

प्रिय वाचक वृन्द !—आर्य ऋषिगण ने दिव्य दृष्टि से देखा था कि उच्छृङ्खल मनुष्य जाति नियम रहित होने से उत्तरोत्तर अवनति ही की ओर अग्रसर होगी, कभी मंगलमय साधु मार्ग पर पैर न रखेगी, प्रत्युत अनुराग प्रणोदित हो निरन्तर असत् कर्म का अनुष्ठान करेगी। सुतरां ऐसी अवस्था में समाज का शरीर अक्षत नहीं रह सकता और मानव हृदय में धर्म भाव भी प्रस्फुटित नहीं हो सकता। इस कारण प्रत्येक जीव एवं समस्त समाज का ऐहिक और पारलौकिक हित साधन उद्देश्य से महर्षियों ने विशेष नियम व्यवस्था विधिवद्ध कियी हैं। मकान—मजबूत करने से पहिले उसकी नाव मजबूत देनी पड़ती है, इस कारण मानव शिशु भूमिष्ठ होने के पहिले ही ऋषि ने सावधान किया है जैसा कि पूर्व महर्षि मनु के वाक्य लिख आए है—

"निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः"।

अतएव गर्भाधान आदि संस्कार सब यथा समय सम्पादन करना आर्य्य मात्र का कर्त्तव्य है। संस्कार का अर्थ शोधन करना, दोषों को हटाकर गुणों का मिलाना। अर्थात् संस्कार द्वारा कहीं तो वस्तुगत दोष विनष्ट होते और कहीं वस्तु में गुण विशेष संयोजित होते। जैसे दर्पण स्वभावतः स्वच्छ और प्रतिविम्बग्राही होता है, किन्तु उसमें दोष विशेष से मालिन्य

उपस्थित हो जाता एवं जिस समय तक उसका मैलापन दूर नहीं होता उतने समय तक उसकी प्रतिबिम्बग्राहिता, या स्वच्छता कुछ भी प्रकाश नहीं पाती। इस कारण उसमें संस्कार का प्रयोजन पड़ता है। घर्षण आदि किया द्वारा वह आगन्तुक मालिन्य, दूर होने पर पुनः दर्पण का दर्पणत्व प्रकाश पाता है।

यही प्रथमोक्त संस्कार का फल है। इसी प्रकार किसी स्थल में वस्तु का किसी प्रकार दोष दूर नहीं होता किन्तु उसमें एक प्रकार गुण या उत्कर्ष मात्र उत्पादन करता है। उसी प्रकार जीव, या जैव अन्तःकरण भी स्वभाव से स्वच्छ है किन्तु कामादि संसर्ग फल से उसमें मालिन्य, या अज्ञान उपस्थित होता, मालिन्य उपस्थित होने से उसमें पुनः विवेक ज्ञान प्रकाश नहीं पाता, विवेक के अप्रकाश से जीव का अधःपतन अवश्यम्भावी, और अधःपतित जीवों को सर्वत्र ही अशान्ति होती, यह स्थिर सिद्धान्त है। सब अनर्थों का मूल स्वरूप उस मालिन्य को दूर कर स्वतेज उद्दीपन करना ही संस्कारों का प्रधान प्रयोजन है। शास्त्रकारों ने भी इस विषय में सुन्दर रूप से समझाया है :—

चित्रंकर्मानेकैरंगैरुन्मीलयतेयथाशनैः।
ब्राह्मण्यमपितद्वत्स्यात्संस्कारैर्विधिपूर्वकैः॥

'द्रष्टव्य':—षोडश संस्कारों की जिनमहानुभावों को सविस्तर विधि यदि देखना हो तो, "संस्कारविधि" नामक ग्रंथ ऋषि दयानन्द कृत जो 'वैदिकयंत्रालय' अजमेर से प्राप्त होती है मगा कर देखना चाहिए।

"जिस प्रकार छवि, चित्रकार और रचना की कुशलता से क्रमशः अंग प्रत्यंग द्वारा प्रकाशित, या सम्पूर्ण होती, ब्राह्मण्य-तेज भी उसी प्रकार विधिपूर्वक संस्कार कार्य्य के बार २ अनुष्ठान से पूर्णत्व लाभ करता है।"

"उदारचरितानान्तुवसुधैवकुटुम्बकम्" ।

उदार दृष्टि से मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ ऋषियों ने शूद्र पदाधिकारी को भी उपनयन (जनेऊ) संस्कार करने का विधान बताया है। यथा—"**शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम्**" । पारस्कर गृह्यसूत्रे। कां० २ ॥ अर्थात् अदुष्ट कर्म (यथार्थ ज्ञान) वाले शूद्रों का उपनयन (जनेऊ) होना चाहिये।

सज्जनो! संसार में चार वर्ण और चार आश्रम केवल नैतिक और धार्मिक विभाग के कार्य्य संपादनार्थ निर्माण किए गये हैं इसी दृष्टि से हम सब कोई पक्षपातशून्य जिस प्रकार परम पिता जगदीश्वर की आज्ञानुसार सूर्य्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवता प्राणीमात्र का उपकार कर हम सब को शिक्षा दे रहे हैं उसी प्रकार हम सबको चाहिए कि संसार के मनुष्यमात्र में मित्रवत् उपकार कर अपने २ उदारता का परिचय देवें। ऐसा करने से ही स्वाराज्य के अधिकारी हो सकेंगे।

*** इतिषोडशसंस्कारविज्ञानंसमाप्तम् ***

स्वाराज्यप्राप्तिका उपाय

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥

मनु० अ० १२ श्लो० ९१

"सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को बराबर देखनेवाला आत्मयाजी (आत्मयज्ञ करनेवाला) स्वाराज्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है"। शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है। देखिये :—

तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानँ हुत्वा भूतानि चात्मनि-सर्वेषां भूतानाँ श्रैष्ठ्याँ स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्यैत् । तथैवैतद्यजमानः सर्वमेधे सर्वान्मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यँ स्वाराज्यमधिपत्यं पर्येति ॥ शत० ब्रा० १३।४।३।१

"जो यजमान अपने मेधादि सत्व का सब भूतों में अथात् सर्व प्राणियों में और सब भूतों का अर्थात् सर्व प्राणियों का अपने में हवन करके सर्वमेध करेगा, वह श्रेष्ठता, स्वाराज्य (अर्थात् बंधन निवृत्ति, स्वातंत्र्य, आत्मिक तेज) और प्रभुत्व इन तीन गुणों को प्राप्त होगा"। **सारांश**—जो अपने आप को दूसरों के लिये पूर्णता से अर्पण करता है उसके लिये सब विश्व अर्पित अर्थात् प्राप्त होता है। यह सर्वमेध ही सच्चा 'विश्वजित्' यज्ञ है। देखिये :—

सर्वं वै विश्वजित् सर्वपृष्ठोऽतिरात्रः सर्वं सर्वमेधः सर्वस्याप्त्यै सर्वस्यावरुद्ध्यै ॥ शत० १३।४।३।१२

"यह सर्व विश्वजित् (अर्थात् सब जगत् को जीतनेवाला यज्ञ) है। (सर्व—पृष्ठः) सब इसके पीठपर होते हैं। (अति-रात्रः) अज्ञान रात्रि का नाश होता है। सर्वमेध से सब (श्रेष्ठता) की प्राप्ति होती है।" ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

योगमण्डल काशी के ग्रन्थ।

(योगसाधन माला)

१ मनोयोग (पूर्वार्द्ध) मेस्मेरिज्म।	...	मू० ।-)
२ मनोयोग (उत्तरार्द्ध) हिप्नाटिजम्म।	...	मू० ।-)
३ आत्मयोग।	...	मू० ॥।=)
४ शरीरयोग।	...	मू० ॥)
५ योगदर्शन भाषानुवाद।	...	मू० ॥=)
६ प्राणायाम विधि।	...	मू० १=)
७ ब्रह्मानन्द।	...	मू० ।-)
८ प्राणायाम चिकित्सा।	...	
९ योगाङ्ग और शरीराङ्ग।	...	
१० संयमावधि।	...	
११ सच्ची विभूति।	..	
१२ मृत्युञ्जय।	...	
१३ योग विज्ञान।	...	
१४ संस्कार विज्ञान।	...	
१५ अक्षर विज्ञान। (अप्रकाशित)	...	
१६ वेद विज्ञान। "	...	
१७ उपनिषद् विज्ञान। "	...	
१८ शास्त्र-विज्ञान। "	...	

मंत्री—योगमण्डल,